गीता का भगवान कलाओं में बन्धायमान कृष्ण+चन्द्र माँ नहीं, कलातीत ज्ञान-सूर्य साकार-निराकार का मेल शिवबाबा लिंग-रूप है।

सत्य का स्वभाव होता है कि वह जितना तटस्थ होता है उतना ही संवेदनशील भी। ठीक उसी तरह से शब्दों की कठोरता में सत्य के मर्म को, उसके भाव को और विषय की गंभीरता को समझने का अधिक प्रयास किया जाए, यही हमारा नम्र निवेदन है।

श्रीमद्भगवद्गीता, एक ऐसा अनोखा शास्त्र जो मानव-जीवन के लिए अमूल्य है, ऐसी एकमेव विलक्षण रचना जिसे 'भगवानुवाच' की मान्यता प्राप्त है। वेदव्यास द्वारा संकलित इस रचना का भूतकाल में भी बहुत महत्व रहा है, तो वर्तमान में भी काफी लोकप्रिय है। भारतीय संस्कृति के ही नहीं; अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक विद्वान, पंडित, तत्ववादियों को आकर्षित करने में श्रीमद्भगवद्गीता सर्वश्रेष्ठ स्थान पर ही है। आज जितनी टीकाएँ श्रीमद्भगवद्गीता पर की गई हैं, इतनी टीकाएँ कदाचित् ही किसी शास्त्र पर की गई होंगी और सबसे अचरज करने वाली बात यह है कि एक टीका दूसरी टीका को काटने वाली भी है। इसके पश्चात् भी गीता की लोकप्रियता कम नहीं हुई; परंतु क्या श्रीमद्भगवद्गीता वास्तव में इतनी महान है? मानव को ईश्वर से जोड़ने का सामर्थ्य रखने वाली गीता क्या आज मानव को मानवता से जोड़ पाई? वर्तमान पीढ़ी को पुरातन संस्कृतियों से सींचने में, यथार्थ धार्मिक संवेदनाओं एवं विचारों से पोषित करने में क्या श्रीमद्भगवद्गीता सफल हो पाई? अनेक धर्म एवं धर्मशास्त्रों के आडंबर में चल रहे मनुष्यों सहित अन्य जीवों के रक्तपात की उत्तराधिकारी क्या समस्त धर्मशास्त्रों की माई-बाप श्रीमद्भगवद्गीता नहीं है? इस प्रकार की कई बातें सदैव श्रीमद्भगवद्गीता के सामर्थ्य पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। विषादयोग से मोक्षसंन्यासयोग तक की मानवीय जीवन की यात्रा जिस गीता के अध्यायों में समाई हुई है, आज प्रतीत होता है कि उसी गीता ने समस्त संसार को विषाद के समंदर में लाकर खड़ा कर दिया है।

गीता प्रेमी एवं अनुयायियों के लिए यह स्वीकार करना कठिन होगा। यदि उनसे समाज के वर्तमान स्थिति का कारण पूछा जाए तो कदाचित् वे अन्य धर्मों व उनके प्रणेताओं को दोषी ठहराएँ या फिर पाश्चात्य संस्कृति एवं विज्ञान को जिम्मेदार मानें; परंतु हमारी सनातन संस्कृति हमें उन्नति की सीढ़ी स्वाध्याय अर्थात् स्वचिंतन की अनुमति देती है, न कि पतन की जड़ परचिंतन की। इसलिए अन्य धर्म अथवा पाश्चात्य संस्कृति एवं विज्ञान को दोषी मानने से पूर्व हमें हमारी संस्कृतियों के सामर्थ्य का विश्लेषण करना होगा। हमें वर्तमान श्रीमद्भगवद्गीता के मानवीय अध्ययन एवं टीकाओं में दोष ढूँढ़ना होगा; क्योंकि मूल पतन का कारण इन्हीं मानवीय टीकाओं में छिपा हुआ है। आइए, गीता की निष्फलता को जानने का प्रयास करते हैं :-

गीता एक सरल और सहज कविता है, तो साथ ही रहस्यों से भरी पहेली भी। गीता के प्रत्येक अध्याय में योग जुड़ा है- भक्तियोग, सांख्ययोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग इत्यादि। योग का अर्थ ही है- युक्त होना, जुड़ना; परंतु किससे? गीता में ही एक शब्द आया है ⊗[1]''मन्मनाभव'' अर्थात् 'मेरे मन में समा जाना'। इसका सरल अर्थ यह हुआ कि ईश्वर से योगयुक्त होकर ही प्रत्येक अध्याय का अध्ययन करना अनिवार्य है, तब ही सही रूप से गीता पर विश्लेषण संभव है; इसलिए प्रत्येक अध्याय के नाम में 'योग' शब्द जुड़ा है; परंतु 'मन्मनाभव' का अर्थ यहीं पर समाप्त नहीं होता। गीता में ही आया है- ⊗[2]''इंद्रियों से प्रबल मन है और मन से प्रबल बुद्धि और बुद्धि से प्रबल बुद्धिमानों की बुद्धि वह ईश्वर है।'' जब ईश्वर को इंद्रिय, मन एवं बुद्धि से परे और श्रेष्ठ माना गया है, तो ईश्वर के मन में समा जाने वाली बात का क्या मतलब है? जब तक यह बात स्पष्ट न हो तब तक हम गीता का अध्ययन कैसे करें?

ईश्वर से योग लगाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात है- ईश्वर को जानना। बिना जाने किसी से हम युक्त कैसे हो सकते हैं? हम जितना ईश्वर को जान पाएँगे उतना ही हमारा उनसे योग लगता जाएगा; इसलिए गीता में भी आया है- ⊗[3]''योग और ज्ञान को बाल बुद्धि अलग-2 समझते हैं, पंडितजन नहीं''; किन्तु क्या हम ईश्वर को यथार्थ रूप से जान सके हैं? तो इसके लिए गीता में आया है कि ⊗[4]''ईश्वर को न देवगण जानते हैं, न दानव।'' ⊗[5]''ईश्वर का परिचय ईश्वर के सिवाय कोई दे नहीं सकता'' अर्थात् किसी भी मनुष्य की टीका ईश्वर के सच्चे स्वरूप का परिचय दे ही नहीं सकती और जो गीता की टीकाएँ ईश्वर का सत्य परिचय दे नहीं सकतीं, वह सच्ची गीता की टीकाएँ थोड़े ही हैं; वह तो झूठी अथवा खंडित गीता की टीकाएँ ही मानी जाएँगी। तो फिर गीता की जो इतनी टीकाएँ हुई हैं और इसके आधार पर लोगों द्वारा जो अनुसरण हो रहा है, इसका क्या मतलब है? ये टीकाएँ हमें किस ओर ले जा रही हैं? ज़रूर झूठी दुनिया में ले जा रही हैं।

ईश्वर का परिचय जब स्वयं ईश्वर ही दे सकता है, तो उन्हें ही इस सृष्टि में अवतरित होना होगा और अवतरित होकर अपना परिचय देना होगा। यह स्वयं ईश्वर का परिचय ही सच्ची गीता कही जाएगी; इसलिए गीता स्वयं भगवानुवाच कही गई है। किन्तु, विडम्बना यह है कि गीता के भावार्थ को जिन टीकाओं द्वारा जाना और माना जा रहा है, वह तो सब मनुष्योवाच है।

गीता के गर्भ में धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन के समाधानों का रहस्य छिपा हुआ है; किन्तु मनुष्यों द्वारा की गई पूजनीय गीता की टीकाओं के विश्लेषण से जो निकला,

---

⊗[1] मन्मना भव मद्भक्तः मद्‌याजी माम् नमस्कुरु।... 9/34, 18/65

⊗[2] इन्द्रियाणि पराणि आहुः इन्द्रियेभ्यः परम् मनः। मनसः तु परा बुद्धिः यः बुद्धेः परतः तु सः।। 3/42

⊗[3] सांख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।.. 5/4

⊗[4] न हि ते भगवन् व्यक्तिम् विदुः देवाः न दानवाः।। 10/14

⊗[5] स्वयम् एव आत्मना आत्मानम् वेत्थ त्वम् पुरुषोत्तम।... 10/15

वह समुद्र-मंथन के हलाहल विष समान व्यभिचार एवं भ्रष्टाचार से भरा केवल सांसारिक पतन मात्र ही है। जिस प्रकार दूध से भरी मटकी में अंश मात्र भी विष पड़ जाए तो वह मटकी पूरी-की-पूरी विषैली हो जाती है, ठीक उसी प्रकार गीता असली दूध की भरी हुई मटकी है, जिसमें विभिन्न मानवीय टीकाओं का विष भर चुका है; क्योंकि मनुष्यमात्र स्वयं ही विषय-विकारों का चैतन्य पुतला है और परमपिता परमात्मा के परमार्थ भाव से रची श्रीमद्भगवद्गीता का मनुष्यों द्वारा किया गया विश्लेषण भगवानुवाच गीता के महात्म्य को भंग करता है; क्योंकि हर ⊗[6]मनुष्य स्वार्थी ही होता है, (स्व+शरीर रूपी रथ)। भल गीता रूपी साधन कितना भी पवित्र हो; किन्तु विकारी साधक की स्वारथ से भरी साधना इसी पवित्र गीता को अपनी टीकाओं द्वारा समाज के लिए अभिशाप बना देती है। यही हुआ है और अभी भी हो रहा है; इसीलिए समस्त मानव समाज विकारों के पतन के गर्त में जा रहा है। ये टीकाएँ ही बहुत बड़ा अधर्म हैं और इसी अधर्म को मिटाने के लिए परमपिता अवतरित होते हैं।

अपना परिचय देने अर्थात् गीता को यथार्थ समझाने हेतु जब परमपिता इस सृष्टि में आते हैं तो क्या हमारी और आपकी तरह स्थूल गर्भ में पककर जन्म लेते हैं? क्या भ्रष्ट इंद्रियों के विकारी कृत्य से उत्पन्न होते हैं? इसी बात को स्पष्ट करते हुए गीता में कई बार आया है कि ⊗[7]“परमपिता परमात्मा का जन्म और कर्म दिव्य है” (गीता 4/9) अर्थात् परमपिता परमात्मा अजन्मा है। तो फिर अजन्मा परमपिता का इस सृष्टि में अवतरित होना कैसे संभव हो सकता है? इसके लिए भी गीता में आया है कि ⊗[8]“परमपिता जानने, देखने तथा प्रवेश करने योग्य हैं।” (11/54) यदि निराकार आत्माओं का बाप ज्योतिबिंदु की भाँति अणोः अणीयांसम् (अणु से भी अणु) है, तो उन्हें अवश्य किसी एक मानवीय मुकर्रर शरीरधारी में ही प्रवेश करना पड़ेगा और पंचतत्वों से बने किसी शरीर में आना होगा। अब अजन्मा परमपिता को यदि इस प्रकार से अवतरित होना पड़े, तो ये केवल प्रवेशता से ही संभव है; इसलिए उन्हें प्रवेश करने योग्य भी कहा है। उन्हें किसी मनुष्य तन आदम/ऐडम/आदिदेव शंकर/आदिनाथ कहे जाने वाले मनुष्य-आत्मा में प्रवेश करना पड़े अर्थात् ⊗[9]“अजन्मा परमपिता इस सृष्टि में आकर जन्म-मरण के चक्र में आने वाले, निस्संदेह किसी विशेष मनुष्य-तन का आधार लेकर, उसमें प्रवेश कर, अपने अधीन रख पार्ट बजाते हैं।” परमपिता इसी व्यक्तित्व द्वारा अर्थात् परंब्रहम यानी त्रिमूर्ति शिव की अव्यक्त-मूर्ति (अव्यक्तमूर्तिना 9/4) द्वारा रची गई नई ब्राहमण सो देवता सृष्टि की स्थापना, पुरानी ब्राहमणों की सृष्टि का विनाश और नई सृष्टि की पालना का कार्य करते हैं और इसी साकार स्वरूप सगुण के मन में समा जाने को ही ‘मन्मनाभव’ कहा जाता है। यही सारी मनुष्य-सृष्टि का वह केंद्र बिन्दु है, जो गीता को योग्य एवं

⊗[6] सुर, नर, मुनि सबकी यह रीति, स्वारथ लागे करै सब प्रीति।

⊗[7] जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवम् यः वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहम् पुनः जन्म न एति माम् एति सः अर्जुन।। 4/9

⊗[8] ज्ञातुम् द्रष्टुम् च तत्त्वेन प्रवेष्टुम् च परंतप।। 11/54

⊗[9] अजः अपि सन् अव्ययात्मा भूतानाम् ईश्वरः अपि सन्। प्रकृतिम् स्वाम् अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया।। 4/6

अयोग्य सिद्ध करता है। इसी बात पर गीता की टीकाओं के खंडित होने का आधार जुड़ा है अर्थात् गीता में आए समस्त दोषों की शुरुआत इसी तथ्य को न समझने के कारण हुई है। कैसे?

मन्मनाभव के उपरोक्त अर्थ को न मानने और न जानने से जो भयंकर भूल मानवीय टीकाकारों द्वारा हुई है, वह निम्न प्रकार से हैं :-

<u>परमपिता परमात्मा सर्वव्यापी है या एकव्यापी?</u> :- अवतार का अर्थ ही है- ऊपर (गीता 15/6) से नीचे उतरना या आना अर्थात् परमपिता का अवतरण यही बताता है कि परमपिता कहीं ऊपर से इस मानवीय सृष्टि पर आते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि परमपिता इस संसार में नहीं रहते, तो सर्वव्यापी कैसे हुए? गीता में भी आया है कि ⊗[10]"परमपिता उस परमधाम का रहने वाला है, जिसे न सूर्य, न चंद्र और न ही अग्नि प्रकाशित करती है।" जब परमपिता परमधामवासी है, तो सर्वव्यापी कैसे हो सकते हैं? परंतु गीता की समस्त मानवीय टीकाएँ परमपिता को सर्वव्यापी ही घोषित करती हैं। अब इसका कारण क्या है? गीता के ही श्लोकों के कुछ बेसमझी के अनैतिक अर्थों को उठाकर परमपिता की सर्वव्यापकता वाली टीका की गई है। इनमें सबसे अधिक भूल की गई है समस्त विभूतियोग के अध्याय को समझने में। जैसे इस अध्याय में कहा गया है कि ⊗[11]नदियों में गंगा हूँ, पशुओं में सिंह हूँ, आदित्यों में विष्णु हूँ इत्यादि। इन्हें पढ़ ऐसा प्रतीत होता है जैसे परमपिता परमात्मा भिन्न-2 योनियों की श्रेणियों के रूप में अपनी उपस्थिति को बता रहे हैं; किन्तु यह समझ भूल मात्र ही है। इस भूल को गंभीरता से समझने का प्रयास करते हैं :-

सर्वप्रथम 'विभूति' शब्द को जानने का प्रयास करते हैं। विभूति का संस्कृत अर्थ है- वि(विशेष) + भूति(जन्म) अर्थात् विशेष रूप से जन्म लेने वाला। जब जन्म ही विशेष है, तो स्पष्ट है कि वह केवल परमपिता परमात्मा की ही बात है, जो अजन्मा होते हुए परकाया प्रवेश कर दिव्य अलौकिक जन्म लेते हैं। बाकी सभी का जन्म तो साधारण शारीरिक प्रक्रिया के तौर पर होता है, तो उसमें विशेष क्या है और जब विशेष नहीं है तो विभूति कैसे है? तो विभूति सर्वव्यापी कैसे हो सकता है?

दूसरी बात, हमें यह समझना है कि भिन्न-2 श्रेणी की योनियों को ही भगवान का अपना रूप कहा गया है, सभी परमपिता परमात्मा नहीं हैं। जैसे- परमात्मा को नदियों में गंगा बताया है, तो इससे स्पष्ट है कि अन्य नदियों को परमात्मा नहीं माना गया है; आदित्यों में विष्णु बताया है, तो इसका तात्पर्य है कि अन्य देवताएँ परमात्मा रूप नहीं है; शस्त्रधारियों में राम यदि परमात्मा है तो अन्य शस्त्रधारी कोई भी परमात्मा नहीं है। इसी प्रकार जो सर्वश्रेष्ठ है उसे ही परमात्मा का रूप माना गया है। यहाँ पर परमात्मा की सर्वव्यापकता की बात तो खारिज हो जाती है; किन्तु परमात्मा

⊗[10] न तत् भासयते सूर्यः न शशांकः न पावकः। यत् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमम् मम।। 15/6

⊗[11] अध्याय-10 के श्लोक 21 से 38 देखें।

फिर भी अनेकव्यापी सिद्ध हो रहे हैं, जो कि गलत ही है। इसके लिए गीता में आया है- ⊗[12]"जो भी कोई ऐश्वर्यवान्, शक्तिवान्, श्रेष्ठ बुद्धिमान हैं, उसको मेरे अर्थात् परमपिता परमात्मा के तेज के अंश से उत्पन्न हुआ जान।" तेज के अंश से उत्पन्न होने का क्या अर्थ है? जिस प्रकार किसी सुंदर, बलिष्ठ, बुद्धिमान व्यक्ति को अपने समान पुत्र प्राप्त हो, तो यही कहा जाता है कि पुत्र को यह तेज अपने पिता से प्राप्त है। उसी व्यक्ति के अनेक बच्चे होने पर भी, उसकी ज़िम्मेदारी उठाकर उसके सपनों को पूरा करने वाले, उसको गौरवान्वित करने वाले पुत्र को ही वह अपना मानता है, अपना रूप समझता है; परंतु इससे क्या पिता और पुत्र को एक ही माना जाएगा? क्या पिता का और पुत्र का अपना-2 व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं रहता? ठीक इसी प्रकार इन विभूतियों का भी अर्थ है। जो कोई भी निराकार परमपिता परमात्मा के साकार व्यक्तित्व से मन्मनाभव की स्थिति प्राप्त करता है, उसे परमपिता परमात्मा के योग रूपी तेज का वह प्रभाव पुरुषार्थ अनुसार नंबरवार प्राप्त होता है, जिससे वह श्रेष्ठ, ऊँच और महान सिद्ध होता है। यह जो आध्यात्मिक प्रत्यक्षता रूपी जन्म होता है, वह विशेष जन्म अर्थात् विभूति माना जाता है। विभूतियाँ सभी परमपिता परमात्मा के आत्मा रूपी बच्चे हैं; परंतु उन सभी मनुष्य-आत्माओं को परमात्मा समझना- यह मूर्खतापूर्ण भूल है।

एक और उदाहरण से इस गंभीर विषय को समझने की चेष्टा करते हैं। जैसे जड़ सूर्य सतत अपनी ऊर्जा को रोशनी एवं गर्मी के रूप में विश्व-कल्याण हेतु देता रहता है। इस सौर ऊर्जा से हम बैटरी को उसकी क्षमता अनुसार चार्ज कर अपने कार्य में लगा सकते हैं। इस कारण यदि कोई बैटरी को ही 'सूर्य' कहने लगे तो उसे क्या कहेंगे? अवश्य मूर्ख ही कहेंगे। विभूतियों को समझने में यही भूल हुई है। कई आत्मा रूपी बैटरीज़ अपनी यथासंभव योगशक्ति चतुर्युगी के अंत में साकार में आए निराकार परमपिता परमात्मा रूपी चैतन्य ज्ञान शक्ति-सूर्य से मन्मनाभव होकर अपने भीतर भी नंबरवार पुरुषार्थ अनुसार भर लेती हैं और जो अधिकाधिक योगशक्ति को भर पाती हैं, उन्हें यहाँ पर विभूति कहा गया है। इसी भाव को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए सम्पूर्ण ज्ञानार्जन करने वाले अर्जुन को समझाते हुए भगवान कहते हैं कि ⊗[13]"मेरे अनेक विभूतियों को जानने से क्या प्रयोजन? मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपने एक अंश द्वारा टिका करके स्थित हूँ।" अर्थात् एक ही वह ज्योतिबिन्दु रूप शिवलिंग शरीरधारी आत्मा है, जिसके (आत्मा+शरीर) द्वारा समस्त जड़-जंगम जगत को टिकाकर परमपिता अपने परमधाम में स्थित हैं। साकार में आए परमपिता परमात्मा स्वरूप की यही याद/योग कही जाने वाली याद की शक्ति ही वास्तव में समस्त आत्माओं में व्याप्त होती है। सभी के अंदर समस्त जड़-जंगम जगत में परमपिता परमात्मा के उस साकार स्वरूप की नंबरवार याद समाई हुई होती है। इस कारण ही गीता में बताया है कि ⊗[14]"परमात्मा सभी भूतों के हृदय

⊗[12] यत् यत् विभूतिमत् सत्त्वम् श्रीमत् ऊर्जितम् एव वा। तत् तत् एव अवगच्छ त्वम् मम तेजोंऽशसम्भवम्।। 10/41

⊗[13] अथवा बहुना एतेन किम् ज्ञातेन तव अर्जुन। विष्टभ्य अहम् इदम् कृत्स्नम् एकांशेन स्थितः जगत्।। 10/42

⊗[14] अहम् आत्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। ... 10/20

अर्थात् मन में स्थित है"; परंतु इस बात को भी पूर्ण तरह से निरर्थक रूप में उठाकर परमपिता परमात्मा को सर्वव्यापी मान लिया गया, जो कि बड़े-ते-बड़ा झूठ है।

इस विभूतियोग के विषय से मनुष्य सर्वव्यापी रूपी विष को ही उत्पन्न करेगा, यह सर्वज्ञ परमपिता परमात्मा तो जानते ही थे; इसलिए विभूतियोग नामक 10वें अध्याय से पूर्व ही 9वें अध्याय में परमात्मा की सर्वव्यापकता की बात को पहले से ही खारिज कर दिया है। इसमें बताया गया है कि ⊗[15]"समस्त भूत परमात्मा में स्थित हैं; परंतु परमात्मा उन भूतों में नहीं है।" इससे यह सिद्ध होता है कि जो भी विभूतियों सहित अन्य भूतप्राणी हैं, उनमें परमात्मा व्याप्त नहीं है। इसी ज्ञान को समस्त विद्याओं में और विद्याओं की गोपनीयता में 'राजा' कहा गया है। कदाचित् इसलिए ही इस 9वें अध्याय का नाम भी 'राजविद्याराजगुह्ययोग' रखा गया है। इतना ही नहीं; परंतु परमपिता की सर्वव्यापकता वाली बात को खारिज करने वाले इस ज्ञान को ⊗[16]"धर्मानुकूल, सहज एवं अविनाशी भी बताया गया है।" 'प्रत्यक्षावगमं' कहते हुए यह भी सिद्ध कर दिया कि यह ज्ञान परमपिता परमात्मा के प्रत्यक्ष स्वरूप द्वारा ही जाना जाता है। इसलिए इस पर श्रद्धा न रखकर परमपिता को सर्वव्यापी मानने वाले को परमात्मा कभी भी प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं हो सकते हैं, बल्कि वे और ही अधोगति में जाते हैं, इतना तक स्पष्ट बताया गया है अर्थात् परमात्मा को सर्वव्यापी समझना ही समस्त संसार की दुर्गति का कारण है, यह मूल रूप से स्पष्ट हो चुका है। यही बड़े-से-बड़ा अधर्म है।

<u>परमात्मा का एकव्यापी स्वरूप कौन?</u> :- परमपिता सर्वव्यापी नहीं है, यह बात तो स्पष्ट हो गई; किन्तु परमपिता का एकव्यापी स्वरूप कौन है, यह भी तो जानना है! वैसे तो समस्त संसार साकार भगवान के रूप में गीता ज्ञानदाता श्रीकृष्ण को मानता है; इसलिए एकव्यापी स्वरूप कौन- यह प्रश्न थोड़ा-सा विचित्र लगता है; परंतु क्या वास्तव में श्रीकृष्ण परमात्मा का स्वरूप है? क्या श्रीकृष्ण ने ही श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान समस्त संसार को दिया था? या फिर परमपिता के सर्वव्यापी वाले अज्ञान की भाँति श्री कृष्ण को गीता ज्ञानदाता समझना एक बड़ी भूल तो नहीं? आइए, इस विषय को भी समझने का प्रयास करते हैं :-

माना जाता है कि आज से 5000 वर्ष पूर्व द्वापरयुग के अंत में श्री कृष्ण ने महाभारत युद्ध के समय अर्जुन को गीता-ज्ञान दिया था; परंतु क्यों? इसका उत्तर देते हुए गीता में आया है कि जब-2 सद्धर्म की ग्लानि होती है, अधर्म की अति होती है, तब साधु-संतों की रक्षा करने, दुराचारियों का विनाश करने एवं सम्पूर्ण धर्म की स्थापना करने मैं आता हूँ; लेकिन क्या वास्तव में अधर्म का, दुराचारियों का विनाश हुआ? क्या सम्पूर्ण सत्य सनातन धर्म की स्थापना हुई? क्या साधु-संतों की रक्षा हुई? आज के हिसाब से यह बहुत बड़ा प्रश्न है, जिसका उत्तर देने में समस्त तथाकथित हिन्दू परिवार असमर्थ है; क्योंकि अधर्म और दुराचारियों का आज कलियुग में और भी अधिक बोलबाला है।

⊗[15] ...मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहम् तेषु अवस्थितः।। 9/4

⊗[16] राजविद्या राजगुह्यम् पवित्रम् इदम् उत्तमम्। प्रत्यक्षावगमम् धर्म्यम् सुसुखम् कर्तुम् अव्ययम्।। 9/2

वैसे भी अधर्म की अति तो कलियुग के अंत में होती है, न कि द्वापरयुग में अर्थात् परमपिता परमात्मा का वास्तविक अवतरण प्रत्यक्ष रूप से कलियुग अंत में ही होता है। इतना ही नहीं, कुछ और भी ऐसी बातें हैं जिनका समाधान स्पष्ट रूप से नहीं हो पा रहा। पहली बात तो यह है कि शास्त्रों में कहा गया है कि सतयुग-त्रेतायुग से कलाएँ गिरते-2 द्वापरयुग के अंत तक केवल 8 से भी कम कलाएँ शेष रह जाती हैं। तो उस द्वापुर युग में 16 कला सम्पूर्ण श्री कृष्ण को कैसे दिखाया गया है? दूसरी बात, जहाँ गीता में एक तरफ आया है कि ⊗[17]''विश्व में दो प्रकार की सृष्टि होती है- एक देवताओं की और दूसरी असुरों की'', वहीं दूसरी ओर यह भी आया है कि ⊗[18]''मेरी एकमात्र अध्यक्षता के कारण से ही प्रकृति समस्त जगत को 'विपरिवर्तते' अर्थात् विपरीत दिशा में परिवर्तित करती है।'' इसका सीधा अर्थ है कि इस संसार का कालचक्र सतयुग-त्रेतायुग से द्वापरयुग-कलियुग की गिरती दिशा में अर्थात् देवताई-सृष्टि से आसुरी-सृष्टि की ओर प्रकृति के गुणों के आधार से घूमता है; किन्तु परमपिता की अध्यक्षता में प्रकृति इस तरह से विपरीत दिशा में परिवर्तित हो ऊपर उठ जाती है कि नए युग सतयुग का ही आरंभ होता है अर्थात् दैवी-सृष्टि के निर्माण हेतु ही परमपिता परमात्मा 'हैविनली गॉडफादर' इस सृष्टि में आते हैं। यह परमपिता परमात्मा के एकव्यापी स्वरूप की अध्यक्षता में प्रकृति का 'विपरिवर्तते' स्वरूप है। यदि परमपिता का एकव्यापी स्वरूप श्री कृष्ण है और यदि उन्होंने द्वापरयुग के अंत में गीता-ज्ञान दिया तो बाद में परिणाम क्या निकला? और भी ⊗[19]''अधिक पाखंडी, घमंडी, अभिमानी, कामी, क्रोधी एवं अज्ञानी आसुरी संपत्ति से प्रवृद्ध हुआ पापी-अधर्मी कलियुग आया।'' यह तो 'जगद्विपरिवर्तते' नहीं हुआ। अर्थात् यहाँ पर यह स्पष्ट हो जाता है कि द्वापर के अंत में न तो गीता-ज्ञान दिया गया था और न ही परमपिता परमात्मा का एकव्यापी स्वरूप श्री कृष्ण है; किन्तु यह सत्य है कि इस प्रकार की भ्रांतियों से आसुरी-सृष्टि का निर्माण अवश्य होता है, जिसे आज हम सब देख रहे हैं।

गीता में आया है कि ''परमपिता परमात्मा के एकव्यापी स्वरूप ने समस्त संसार को ⊗[20]योग की दो निष्ठाएँ वा प्रणालियाँ बताई हैं- ज्ञानियों को ज्ञानयोग(सांख्य योग) और कार्मिक योगियों को कर्मयोग।'' ज्ञानयोग का अर्थ है- पूरी तरह से कर्मों को त्यागकर, अपनी आत्मा को निराकारी-निर्गुण स्थिति में टिकाकर, परमपिता परमात्मा के मन की निःसंकल्पी अवस्था में स्वयं को लीन करना और कर्मयोग का अर्थ ही है- अपने कर्मों को, परमपिता परमात्मा की याद में रहते हुए, उसके कर्मफल को बुद्धि से त्यागना। श्री कृष्ण के जीवन में कहीं भी इन निष्ठाओं का अनुभव नहीं होता, न ही उनका योग में तल्लीन रहने वाला दृष्टांत शास्त्र में कोई है और न ही कर्मयोगी के स्वरूप में निष्कर्म स्थिति को प्राप्त कोई यादगार है; किन्तु शास्त्रों में एक ऐसा स्वरूप है जो दोनों ही निष्ठा

⊗[17] द्वौ भूतसर्गौ लोके अस्मिन् दैव आसुर एव च।... 16/6

⊗[18] मया अध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। हेतुना अनेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।। 9/10

⊗[19] दम्भः दर्पः अभिमानः च क्रोधः पारुष्यम् एव च। अज्ञानम् च अभिजातस्य पार्थ सम्पदम् आसुरीम्।। 16/4

⊗[20] लोके अस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मया अनघ। ज्ञानयोगेन सांख्यानाम् कर्मयोगेन योगिनाम्।। 3/3

को स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है, वह है 'महादेव शंकर'। समस्त कर्मों को त्याग कर, अपने देहभान को राख बनाय (भस्म लिपटा) स्वयं को प्रकृति से भिन्न मानते हुए निर्गुण, निराकार, निरंजन परमपिता ज्योतिबिंदु शिव में एक रूप होने का (सबसे ऊँच कैलाश पर्वत शृंखला में) अभ्यास करते हुए शंकर को ज्ञानयोग अवस्था में आरूढ़ होते हुए तो सभी जानते और मानते ही हैं। इतना ही नहीं; किन्तु कर्मयोग के दृष्टिकोण से देखा जाए तो भी कई दृष्टांत प्राप्त होते हैं। सागर-मंथन के समय जब ग्लानि रूपी अज्ञानता का, सारे संसार को हलचल में लाने वाला, हलाहल विष निकला, तो उसे पीने का सामर्थ्य किसी में नहीं था; विष्णु एवं ब्रह्मा में भी नहीं। केवल महादेव शंकर ही थे, जिन्होंने अपना कर्तव्य समझ विषपान किया था। उस विष का अनिश्चय रूपी मृत्यु का फल भी उन्हें प्राप्त नहीं हुआ; क्योंकि वे कर्मयोगी बन निष्कर्म स्थिति को प्राप्त कर चुके थे। गीता में भी श्लोक आया है- ⊗[21]"जिसमें मैं-पन का भाव न हो और जिसकी बुद्धि कर्मों में लिप्त नहीं होती, वह समस्त संसार का नाश करने पर भी किसी को नहीं मारता है और न ही उस पर मारने का दोष लगता है।" अब विनाश का पार्ट भी शंकर का ही है, जिसका उन्हें कोई दोष भी नहीं लगता। इससे सिद्ध हो जाता है कि दोनों ही योग निष्ठा में महादेव शंकर से श्रेष्ठ और सिद्धहस्त कोई भी नहीं। इसलिए वास्तव में केवल महादेव शंकर को ही 'योगीराज/योगेश्वर' कहा जाना चाहिए; किन्तु श्री कृष्ण के भक्तों की अंधश्रद्धा ने बिना किसी चारित्र्य-प्रमाण के श्री कृष्ण को भी योगेश्वर मान लिया है। वैसे भी कहा है कि ⊗[22]"अंतकाल में जो परमात्मा को सिमरे, वह उन्हीं को प्राप्त होता है।" इसी की यादगार में मानव-जीवन के अंत के पश्चात् जब शारीरिक अंतिम क्रिया करने मोक्षधाम वा श्मशान जाते हैं, वहाँ पर भी शिवालयों में योगेश्वर महादेव शंकर की प्रतिमा ही होती है, श्री कृष्ण की नहीं।

परमपिता जब एकव्यापी स्वरूप में परकाया प्रवेश करते हैं तो वह साकार स्वरूप भी अपने-आप को इस प्रकार से निराकारी स्टेज में तैयार करता है कि परमपिता परमात्मा का सगुण रूप भगवान बन जाता है और निर्गुण परमपिता को अपने सगुण रूप से संसार में प्रत्यक्ष करता है। इसी के बारे में गीता में आया है कि ⊗[23]"जिसका ज्ञान द्वारा अज्ञान नष्ट हो गया है, वह ज्ञान-प्रकाश के अखूट भंडार शिव परमेश्वर को सूर्य की तरह प्रकाशित करता है।" अब अज्ञान आता कैसे है? तो इसके लिए बताया गया है कि ⊗[24]"जिस प्रकार अग्नि धुएँ से ढक जाती है, ठीक उसी प्रकार आत्मा के अंदर के ज्ञान को काम-क्रोध का अज्ञान ढक लेता है।" यह अज्ञान आत्मा और परमपिता सम्बन्धित ज्ञान को और परमपिता के एकव्यापी स्वरूप के विशेष ज्ञान-विज्ञान, ⊗[25]दोनों को ही (मन-बुद्धि के स्मृति से)

⊗[21] यस्य न अहंकृतः भावः बुद्धिः यस्य न लिप्यते। हत्वा अपि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते।। 18/17

⊗[22] अन्तकाले च माम् एव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। यः प्रयाति स मद्भावम् याति न अस्ति अत्र संशयः।। 8/5

⊗[23] ज्ञानेन तु तत् अज्ञानम् येषाम् नाशितम् आत्मनः। तेषाम् आदित्यवत् ज्ञानम् प्रकाशयति तत्परम्।। 5/16

⊗[24] आवृतं ज्ञानम् एतेन ज्ञानिनः नित्यवैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेण अनलेन च।। 3/39

⊗[25] पाप्मानम् प्रजहि हि एनम् ज्ञानविज्ञाननाशनम्।। 3/41

नष्ट कर देता है; इसलिए गीता में इस ⊗[26]काम-विकार रूपी अज्ञान को नष्ट करने के लिए प्रेरित किया है। अब ऐसा कौन-सा स्वरूप है जो शास्त्रों में काम-विकार, कामदेव को भस्म करता हुआ दिखाया है? वह महादेव शंकर है, न कि श्री कृष्ण अर्थात् महादेव शंकर ही परमपिता का साकार एकव्यापी स्वरूप है, जो अपने अंदर के काम-विकार रूपी अज्ञान को अपने भीतर के ज्ञान-योग के तीसरे नेत्र को खोल भस्म करता है। इसी पवित्र, निष्काम शंकर के स्वरूप द्वारा निर्गुण परमपिता सगुण रूप में प्रत्यक्ष होते हैं; क्योंकि नियम यह है कि जो जितना निराकारी होगा वह उतना ही निर्विकारी सृष्टि का निर्माण कर सकता है। परमपिता परमात्मा स्वरूप शंकर द्वारा ही (जगद्विपरिवर्तते रूप में) दैवी-सृष्टि का निर्माण होता है। काम-विकार को लेकर श्री कृष्ण की ऐसी कोई महिमा नहीं है और न उनकी निराकारी अवस्था में टिकने वाली कोई यादगार है; इसलिए श्री कृष्ण किसी भी प्रकार से निर्गुण परमपिता का सगुण रूप हो नहीं सकता और न ही श्रीकृष्ण नई सतयुगी दुनिया स्थापन करने के निमित्त बनते हैं।

'योग' का अर्थ है- मन्मनाभव, जिसका स्पष्टीकरण पहले ही हमने समझ लिया। अब परमपिता जिस साकार मनुष्य में परकाया प्रवेश करते हैं, उस स्वरूप के बारे में गीता में आया है कि ⊗[27]"यह संसार रूपी वृक्ष उल्टे अश्वत्थ वृक्ष समान है, जिसका बीज और मूल 'ऊर्ध्व' अर्थात् ऊपर की ओर है और विस्तार 'अधः' अर्थात् नीचे की ओर।" तो क्या इसका मतलब यह है कि बीज और मूल स्वरूप निराकार शिव परमपिता ऊर्ध्व परमधाम में स्थित होकर समस्त अधः संसार को विस्तारित करता है? नहीं! परमपिता निराकार, निर्गुण और निरंजन है और ये समस्त साकार संसार प्रकृति के तीनों गुणों (सत, रज, तम) में बंधायमान है। जैसे बीज होता है वैसे ही वृक्ष उत्पन्न होता है, वैसे ही फल प्राप्त होता है। तो त्रिगुणमयी संसार रूपी वृक्ष का बीज क्या तीनों गुणों में आने वाला नहीं होगा? इसी बात को समझाते हुए गीता के 7वें अध्याय में आया है कि ⊗[28]"तीनों गुणों की उत्पत्ति मुझसे ही हुई है; किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ; परन्तु वे मुझमें हैं।" यहाँ पर स्पष्ट रूप से समझना है कि 'मुझसे', 'मुझमें' एवं 'मैं' शब्द किस भाव से कहा गया है। निराकार शिव परमपिता और साकार स्वरूप योगीराज शंकर की एकव्यापी रूप प्रवृत्ति में दो शक्तियाँ हैं- 'मुझसे प्रकृति की उत्पत्ति' और 'मुझमें प्रकृति का होना'- ये दोनों ही शक्तियाँ साकार में निराकार की प्रवृत्ति के लिए लागू होती है, वहीं परमपिता शिव के अस्तित्व को निर्गुण बताने हेतु 'मैं उनमें नहीं हूँ' इस प्रकार से स्पष्ट भी किया गया है। वास्तव में यह समझना थोड़ा-सा जटिल है; क्योंकि आत्मा को जानना और परमपिता शिव को जानना, इसे ज्ञान कहते हैं; किन्तु परमपिता शिव को विशेष किसी एक साकार स्वरूप द्वारा जानना केवल ज्ञान नहीं; अपितु विशेष ज्ञान, विज्ञान कहा जाता है; क्योंकि इसमें विशेष रूप से युक्त होना पड़ता है। जहाँ पण्डितों के दृष्टिकोण से ज्ञान और योग भिन्न नहीं होते, वहीं विशेष ज्ञान के

⊗[26] ...जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।। 3/43

⊗[27] ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् प्राहुः अव्ययम्। छन्दांसि यस्य पर्णानि यः तम् वेद स वेदवित्।। 15/1

⊗[28] ये च एव सात्त्विका भावा राजसाः तामसाः च ये। मत्त एव इति तान् विद्धि न तु अहम् तेषु ते मयि।। 7/12

साथ विशेष योग जुड़ा होता है। कदाचित् इसलिए इस 7वें अध्याय का नाम 'ज्ञानविज्ञानयोग' रखा गया है। अब इससे स्पष्ट हो जाता है कि साकार शंकर में निराकार शिव ज्योतिर्बिंदु की प्रवृत्ति ही वास्तव में इस संसार रूपी वृक्ष का बीज स्वरूप मूल कारण है। अब इस बीज स्वरूप मूल के प्रति गीता में एक शब्द आया है 'अव्यक्तमूर्तिना'। मूर्ति कहा ही जाता है साकार स्वरूप को और उसके पहले 'अव्यक्त' विशेषण से यह स्पष्ट कराया कि जो साकार स्वरूप है, वह पुरुषार्थ की निरंतर आत्मिक स्टेज रूप संपन्नता प्राप्त कर परमपिता समान सगुण रूप में अर्थात् व्यक्त में रहते अव्यक्त रूप में प्रत्यक्ष होता है। इसी ⊗[29]"अव्यक्तमूर्ति द्वारा समस्त संसार विस्तार को प्राप्त हुआ है, जिनका अंश इस अव्यक्त-मूर्ति में तो है; किन्तु अव्यक्तमूर्ति में प्रवेश परमपिता शिव का वास समस्त वृक्ष में नहीं है।" यहीं पर परमपिता का परा और अपरा प्रकृति का भेद भी स्पष्ट हो जाता है। परमपिता का एकव्यापी साकार मनुष्य रूप हीरो पार्टधारी परमात्मा की अपरा अर्थात् भौतिक रूप से जानने-पहचानने वाली निम्न स्तर की पंचतत्वों से बनी शारीरिक जड़ प्रकृति है और वही साकार स्वरूप जब अपने अज्ञान को नष्ट कर निर्गुण परमपिता शिव को सगुण रूप में प्रत्यक्ष करने वाला बन जाता है, तो वह अव्यक्त मूर्ति रूप में परमपिता की परा प्रकृति कहलाता है। ⊗[30]"समस्त संसार इस दो प्रकार की प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ है।" इसी परा प्रकृति के बारे में गीता में आया है कि ⊗[31]"परब्रह्म स्वरूप परमपिता शिव की योनि रूपी माता (त्वमेव माता...) है, जिसमें वे बीज बोते हैं और समस्त जड़-चैतन्य संसार को उत्पन्न करते हैं।" अब यदि परा एवं अपरा प्रकृति, दोनों की बात करें तो श्री कृष्ण की कोई यादगार स्वरूप शास्त्रों में नहीं है; किन्तु पाँच महाभूत एवं मन, बुद्धि, अहंकार के अष्टयुक्त में समस्त (दस)इंद्रियों एवं उनके (पाँच)विषयों सहित अपरा प्रकृति के रूप में शंकर का यादगार है और इन सभी (तेईस)भेदों से ऊँच और भिन्न जो शंकर का परमपिता के साथ एकात्म होने का मूल स्वरूप है, उस परा प्रकृति का लिंग रूप में यादगार है। गोपेश्वरम् में इसी लिंग रूप की स्वयं श्री कृष्ण द्वारा भी पूजा करते हुए दिखाया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि समस्त संसार का मूल कारण परमपिता का साकार परमात्मा स्वरूप शंकर का एकव्यापी रूप है और श्री कृष्ण भी उन्हीं के उपासक हैं।

गीता में कहा है- ⊗[32]दो प्रकार के पुरुष अर्थात् आत्मा हैं- एक क्षर और दूसरा अक्षर। समस्त साकार में पार्ट बजाने वाली आत्माएँ, जो त्रिगुणों की माया में क्षरित होती रहती हैं, वे सब 'क्षर' कही जाती हैं। परमपिता शिव, जो त्रिगुण से परे सदैव निरंजन-निर्गुण हैं, जिनका ज्ञान कभी भी क्षरित

⊗[29] मया ततम् इदम् सर्वम् जगत् अव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहम् तेषु अवस्थितः।। 9/4

⊗[30] एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणि इति उपधारय। 7/6

⊗[31] मम योनिः महत् ब्रह्म तस्मिन् गर्भम् दधामि अहम्। सम्भवः सर्वभूतानाम् ततः भवति भारत।। 14/3
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः। तासाम् ब्रह्म महत् योनिः अहम् बीजप्रदः पिता।। 14/4

⊗[32] द्वौ इमौ पुरुषौ लोके क्षरः च अक्षरः एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थः अक्षरः उच्यते।। 15/16
उत्तमः पुरुषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः। यः लोकत्रयम् आविश्य बिभर्ति अव्ययः ईश्वरः।। 15/17

नहीं होता और जो सबसे ऊपर परमधाम (गीता 15/6) में स्थित हैं, उन्हें ही 'अक्षर' कहा गया है; किन्तु इन दोनों क्षर एवं अक्षर से उत्तम कोई बनता है, जिसे 'पुरुषोत्तम' कहा जाता है। यह पुरुषोत्तम इसलिए सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि यह क्षरित दुनिया में रहते हुए अक्षर स्थिति में स्थित हो, क्षर और अक्षर दोनों के लिए माध्यम बनता है, इस संसार के लिए दलाल बन परमपिता शिव से मिलाने का काम करता है। बिना इस पुरुषोत्तम के न तो अक्षर परमपिता कुछ कर सकता है और न क्षर आत्माएँ कुछ कर सकती हैं; इसलिए इन क्षर (मृत्युलोक), अक्षर (परमधाम/ब्रह्मलोक) और अव्यय पुरुषोत्तम (अमरलोक) के स्थिति रूप तीनों लोकों को पुरुषोत्तम स्वरूप अधिकार में लेता है। इसी पुरुषोत्तम को समस्त मनुष्य-आत्माओं में परम और श्रेष्ठ होने कारण 'परम+आत्मा' (गीता 15/17) कहा जाता है। यह परमात्मा स्वरूप श्री कृष्ण का नहीं है; क्योंकि पुरुषोत्तम परमात्मा को गीता में ⊗[33]'अव्यय ईश्वर' इस शब्द से संबोधित किया है। 'अव्यय' का अर्थ ही है- अविनाशी। श्री कृष्ण को कभी भी अविनाशी नहीं कहा जा सकता। गीता में तो स्पष्ट आया है कि ⊗[34]"जिस अविनाशी से यह समस्त संसार विस्तृत है, उस अव्यय पुरुष अर्थात् पुरुषोत्तम परमात्मा का विनाश करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है"; किन्तु शास्त्रों में प्रख्यात है कि किसी बहेलिये के तीर लगने से श्री कृष्ण की मृत्यु हो गई थी अर्थात् वे भी क्षरित होने वाले पुरुषों की श्रेणी में हैं; अव्यय परमात्मा नहीं हैं। यह पुरुषोत्तम परमात्मा स्वरूप वास्तव में शंकर ही है, जो मृत्यु से भी परे हो जाता है। गीता में भी आया है- ⊗[35]"जिनका मन समानता में स्थिर है, उन्होंने यहाँ मृत्युलोक रूपी संसार को ही जीत लिया है।" जो मृत्यु को जीत लेता है, वही औरों को भी अमरत्व(देवत्व) प्रदान कर सकता है; जो संसार का विनाश कर सकता है, उसी में संसार को उत्पन्न करने का सामर्थ्य भी होता है; इसलिए परमात्मा द्वारा ही सृष्टि का सृजन एवं प्रलय संभव है। गीता में भी आया है कि ⊗[36]"पुराने कल्प के अंत में समस्त भूत अर्थात् क्षर आत्माएँ अव्यय परमात्मा के ज्योतिर्लिंग अवस्था को प्राप्त करते हैं और नए कल्प के आदि में अपने-2 स्वभाव अनुसार उन्हें फिर से सृष्टि के लिए नए शुद्ध रूप से परम् ब्रह्म परमात्मा छोड़ते हैं।" अंत में समस्त संसार श्री कृष्ण सहित इसी परमपिता परमात्मा के एकव्यापी परमेश्वर शिवशंकर स्वरूप से मन्मनाभव होकर अपनी-2 अवस्था को पा लेते हैं। इसी की यादगार में मंदिरों में धागे के बंधन में अनेक सालिग्रामों के बीच निर्बंधन शिवलिंग को दिखाया जाता है। कल्प के अंत में ⊗[37]समस्त संसार के नष्ट होने पर भी वह अव्यय परमात्मा स्वरूप शिवशंकर का नाश नहीं होता और कल्प के आदि में सभी के उत्पन्न होने का मूल कारण होने से उनका जन्म भी कोई नहीं जानता। इसलिए गीता में स्पष्ट आया है कि ⊗[38]"मुझे अजन्मा, अनादि

⊗[33] उत्तमः पुरुषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः। यः लोकत्रयम् आविश्य बिभर्ति अव्ययः ईश्वरः।। 15/17
⊗[34] अविनाशि तु तत् विद्धि येन सर्वम् इदम् ततम्। विनाशम् अव्ययस्य अस्य न कश्चित् कर्तुम् अर्हति।। 2/17
⊗[35] इह एव तैः जितः सर्गः येषाम् साम्ये स्थितम् मनः।... 5/19
⊗[36] सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिम् यान्ति मामिकाम्। कल्पक्षये पुनः तानि कल्पादौ विसृजामि अहम्।। 9/7
⊗[37] परः तस्मात् तु भावः अन्यः अव्यक्तः अव्यक्तात् सनातनः। यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।। 8/20
⊗[38] यः माम् अजम् अनादिम् च वेत्ति लोकमहेश्वरम्। असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। 10/3

एवं महेश समझने वाला समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।" यहाँ पर भी पाप हरता, मुक्तिदाता श्री कृष्ण को नहीं; अपितु महान ईश- महेश अर्थात् परमात्मा स्वरूप महादेव शंकर को ही कहा है।

वेदों में 'भगवान' पदनाम अनन्य रूप से केवल भगवान रुद्र के लिए प्रयोग किया है। यजुर्वेद का श्री रुद्र श्लोक वेदों के भगवान के रूप में रुद्र की वंदना से आरम्भ होता है। इसके अनुसार 'ओम नमो भगवते रुद्राय' जिसका अर्थ है 'रुद्र, जो कि भगवान (ईश्वर की परम मूर्ति) हैं, को नमन'। बाकी सभी देवता, जिन्हें भगवान की उपाधि मिली, उन्होंने वह उपाधि पुराणों से प्राप्त की, न कि वेदों से। वास्तव में बाद के ग्रंथों (पुराणों) में नारद और व्यास को भी इस उपाधि से अलंकृत किया गया। अतः बाद के ग्रंथों में बोलचाल की भाषा में यह उपाधि सबके लिए प्रयोग की जाने लगी। भगवान विष्णु के नामों का उल्लेख करने वाले मंत्र; जैसे- 'ओम नमो भगवते वासुदेवाय' आदि पौराणिक हैं, न कि वैदिक। वेदों में केवल भगवान रुद्र (शिव) ही भगवान हैं और चूँकि भगवद्गीता वेदों और उपनिषदों का सार है, यह हमारे लिए पर्याप्त इशारा है कि भगवान रुद्र ही गीता ज्ञानदाता हैं। इस ज्ञान का आरम्भ ही 'अविनाशी रुद्र-ज्ञान-यज्ञ' से होना है।

गीता में आए 'कृष्ण' शब्द की महिमा वास्तव में परमपिता परमात्मा शिव की ही है। अब प्रश्न उठता है कि यदि श्री कृष्ण परमात्मा स्वरूप गीता ज्ञानदाता नहीं हैं तो गीता में जगह-2 'कृष्ण' नाम क्यों लिया गया है? हम जानते हैं कि गीता कोई साधारण नहीं; अपितु परमपिता परमात्मा की रचा गीत वा कविता है। कविता को कवि जिस प्रकार से अलंकृत करता है, जो भाव भरता है, वह साधारण नहीं होता। ठीक इसी प्रकार परमपिता परमात्मा द्वारा रचित इस कविता में भी बहुत ऐसी भावनाएँ हैं जिसे अलंकृत शब्दों में कहा गया है। जहाँ 'कृष्ण' नाम आ रहा है वह वास्तव में गुणवाचक शब्द है। कृष्ण का अर्थ काला या आकर्षित करने वाला है। ये दोनों ही अर्थ केवल परमपिता परमात्मा स्वरूप महादेव शंकर के लिए ही लागू होते हैं- त्रिगुणमयी प्रकृति के बीच कलियुग-अंत के समय तक भी साकार में रहने के कारण काला स्वरूप है; समस्त संसार को, भूतप्राणियों को, देव हों या असुर या कोई भी वर्ग के हों, सभी के इष्ट माने जाते हैं। महादेव शंकर को शास्त्रों में समस्त संन्यासियों के जीवन को आकर्षित करने वाला प्रेरणा-स्त्रोत माना है, तो समस्त परिवार (पत्नी पार्वती, पुत्र गणेश-कार्तिकेय, भक्त नंदी एवं अन्य रुद्रगण) सहित गृहस्थ धर्म के संचालक रूप में भी प्रवृत्ति मार्ग वालों द्वारा सर्वश्रेष्ठ आकर्षण ही माने गए हैं। श्री कृष्ण के प्रति संन्यासियों का कोई विशेष आकर्षण नहीं देखा जाता और श्री कृष्ण के प्रति न किसी असुर का आकर्षण शास्त्रों में दिखाया गया है; इसलिए 'कृष्ण' शब्द गुणवाचक ही माना जाएगा।

इसी कृष्ण को लेकर अर्जुन के भ्रम को 11वें अध्याय में आए एक अन्य दृष्टांत से भी समझने का प्रयास करते हैं- परमपिता परमात्मा के विश्वरूप का दर्शन करते हुए जब अर्जुन भयभीत हुआ, तब वह समझ नहीं पाया कि वह विराट स्वरूप है कौन। इसी संदर्भ में उसने भयभीत स्वर से हाथ जोड़ते हुए परमपिता परमात्मा की स्तुति कर उन्हें जानने की जिज्ञासा से पूछा कि

⊗[39]“विकराल रूप में प्रवृत्त आप कौन हो, मैं समझ नहीं पा रहा। कृपया अपना परिचय दें?” यहाँ पर अचरज की बात है कि जो अब तक के समस्त गीता अध्याय में कृष्ण-विष्णु नाम से उल्लेख करते हुए अपनी जिज्ञासा शांत करने का प्रयास कर रहा था, उस अर्जुन को वास्तविकता का बोध होते हुए यह स्पष्ट हो रहा था कि परमात्मा स्वरूप श्री कृष्ण नहीं है, बल्कि कोई और है। अन्यथा यह प्रश्न पूछने का क्या अभिप्राय? और अर्जुन की इसी जिज्ञासा को शांत करते हुए परमात्मा ने कहा कि ‘कालोऽस्मि’ (अध्याय-11, श्लोक-32) अर्थात् मैं काल हूँ। यह तो हम सब जानते हैं कि कालों का काल महाकाल कहा गया है और महाकाल यह महादेव शंकर का ही उग्ररूप माना जाता है। अर्थात् यहाँ पर भी स्पष्ट होता है कि गीता ज्ञानदाता परमपिता शिव का एकव्यापी स्वरूप महादेव शंकर ही है, न कि श्री कृष्ण।

‘कृष्ण’ शब्द को लेकर एक और तर्क को समझने का प्रयास करते हैं :-

परमात्मा जब अपने काल स्वरूप का परिचय दे देते हैं, तब अर्जुन अपनी भूल को स्वीकार करते हुए कहता है कि ⊗[40]“हे कृष्ण! हे यादव! हे सखा!- इस प्रकार जो कुछ तिरस्कारपूर्वक कहा हो, उसके लिए जगत से न्यारे परमपिता परमात्मा आप से मैं क्षमा माँगता हूँ।” अव्यय परमात्मा स्वरूप महादेव शंकर को क्षर पुरुष श्री कृष्ण समझकर संबोधित करने के तिरस्कारपूर्वक कृत्य की आत्मग्लानि होने से अर्जुन ने यह क्षमायाचना की; किन्तु बुद्धिमान नर कहे जाने वाले अर्जुन ने दुबारा अध्याय-17 के प्रथम श्लोक में ‘कृष्ण’ शब्द से परमात्मा को संबोधित किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि ‘कृष्ण’ शब्द नामवाचक नहीं है; अपितु समस्त संसार को आकर्षित करने वाले गुण को अभिव्यक्त करते हुए परमात्मा स्वरूप महादेव शंकर को संबोधित किया गया है, अन्यथा अर्जुन द्वारा क्षमा माँगने का क्या अभिप्राय?

चित्र के साथ-2 चरित्र के संबंध में भी शास्त्रों में श्री कृष्ण एवं महादेव शंकर के बीच बहुत बड़ा अंतर है। द्वैतवादी भक्तिमार्ग में श्री कृष्ण का चरित्र नियमों का उल्लंघन एवं मर्यादाओं को तोड़ता हुआ दिखाया है। अधिक-से-अधिक उनकी महिमा बाल्य एवं किशोर अवस्था की दिखाई गई है और इस रूप में सदैव उनकी अनुशासनहीनता ही स्पष्ट दिखाई पड़ती है। चोरों की भाँति मटकी फोड़ माखन लूटना और उसे अपने सखाओं सहित खा जाना, गोपियों के कामों में बाधा डालना; जैसे- पानी से भरी मटकियों को फोड़ना, उनके घर में बँधे गाय के बछड़ों को खोलना इत्यादि। शास्त्रों में दिखाया गया है कि श्री कृष्ण के इस चरित्र को लेकर समस्त गोकुल परेशान था और कई बार उनके द्वारा यशोदा और नन्द के समक्ष शिकायतें भी की गई थीं। गीता में भी आया है कि ⊗[41]“जो लोग न

⊗[39] आख्याहि मे कः भवान् उग्ररूपः नमः अस्तु ते देववर प्रसीद। विज्ञातुम् इच्छामि भवंतम् आद्यम् न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।। 11/31

⊗[40] प्रसभम् यत् उक्तम् हे कृष्ण हे यादव हे सखे इति।...11/41 तत् क्षामये त्वाम् अहम् अप्रमेयम्।।... 11/42

⊗[41] यस्मात् न उद्विजते लोकः लोकात् न उद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः यः स च मे प्रियः।। 12/15

संसार को परेशान करते हैं और न ही संसार से परेशान होते हैं, वे परमपिता परमात्मा को प्रिय हैं"; किन्तु शास्त्रों में आए श्री कृष्ण के चरित्र इस पर खरे उतरते नहीं दिखते। यदि इसे कृष्ण का बचपना मानकर भूल भी जाएँ, तो भी युवा अवस्था में उनकी इस प्रकार की महिमा शास्त्रों में कुछ कम विख्यात नहीं है। अर्थवाचक गोपियों के वस्त्रों को नहाते समय चुराना, अनेक पत्नियाँ रखना इत्यादि। अब गीता में आया है कि ⊗[42]"श्रेष्ठ पुरुषों के कर्मों का सभी अनुसरण करते हैं।" शास्त्रों में जिस रूप में श्री कृष्ण के चरित्र की महिमा की गई है, क्या वह चरित्र सामान्य लोगों के अनुसरण करने जैसा है? कदापि नहीं; किन्तु विडम्बना यही है कि गीता ज्ञानदाता श्री कृष्ण को मानने से सामान्य लोगों ने इसी चरित्र का अनुसरण किया और आज समस्त मानवीय समाज दूषित/प्रदूषित हो चुका है। (अधिक जानकारी हेतु 'खंडित गीता से उत्पन्न समस्याएँ एवं उनका समाधान' देखें।)

निर्गुण-निरंजन परमपिता शिव को सर्वव्यापी मानना एवं सगुण रूप में श्री कृष्ण को परमात्मा मानना ही श्रीमद्भगवद्गीता में की गई सबसे बड़ी भूल है। इसी भूल ने आज समस्त संसार को अमानवीय असुर रूप में खड़ा कर दिया है।

<u>शिव-शंकर में अंतर एवं सभी धर्मों में एकव्यापी शिवलिंग स्वरूप की मान्यता</u> :- यह तो हमने जान लिया कि परमात्मा सगुण रूप में महादेव शंकर ही एकव्यापी स्वरूप है; किन्तु निर्गुण, निरंजन परमपिता का एकव्यापी स्वरूप में जो नाम विश्वप्रख्यात होता है, वह है 'शिव'। शिव का अर्थ है ही सदा शुभ वा कल्याणकारी और परमपिता शिव अपने साकार आधार शंकर से भिन्न ही हैं। यह शिव सदैव शंकर से बड़े एवं अधिक पूजनीय माने गए हैं; इसलिए उनका नाम पहले लिया जाता है; जैसे- परमपिता परमात्मा कहते हैं, न कि परमात्मा परमपिता; शिव-शंकर कहते हैं, न कि शंकर-शिव। शिव की प्रवेशता के पश्चात् साकार स्वरूप शंकर सहज राजयोग के अभ्यास द्वारा अपने देह के भान को इस तरह से भूल कर निराकार अवस्था बना लेता है कि पारदर्शित रूप में अंततः सदा शुभ शिव ही अनुभव होता है। इसी कारण शिव और शंकर में भेद नहीं किया जा सका और दोनों को एक ही माना गया। यही शिव-शंकर के एकात्म होने का स्वरूप लिंग की यादगार रूप में प्रख्यात है। इस शारीरिक लिंग के बीच में जो बिंदी दिखाई जाती है, वह निर्गुण परमपिता शिव की ही निरंतर याद अर्थात् कर्मयोग की यादगार है; इसलिए इसे शिवलिंग ही कहा जाता है, न कि शंकरलिंग। यह निराकार स्टेज शिवलिंग ही समस्त धर्मों में मान्य है और पूजनीय भी।

वास्तव में एकव्यापी परमपिता परमात्मा शिव-शंकर के अव्यक्त, अमूर्त ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप को ही स्वीकारा गया है। उनका वास्तविक स्वरूप तो अणु से भी अणुतम है, जो आँखों से भी न दिखाई देने के कारण निराकार कहा जाता है। वैदिक परम्परा में पूजा करने की सुविधा के लिए ही अति सूक्ष्मतम ज्योतिर्बिंदु शिव का बड़ा आकार शिवलिंग साकारी सो निराकारी स्वरूप बनाया गया

⊗[42] यत् यत् आचरति श्रेष्ठः तत् तत् एव इतरः जनः। स यत् प्रमाणम् कुरुते लोकः तत् अनुवर्तते।। 3/21

है। वेद-पुराण-उपनिषदों से लेकर आज तक मंदिरों में भी उसी लिंग आकार, अमूर्त (जिसकी किसी प्राणी जैसी मूर्ति न हो) शिव की महिमा का सबसे अधिक गायन है; क्योंकि यही उनका सच्चा स्वरूप है। सिंधु नदी की घाटी में भी लिंग मूर्तियों की ही संख्या सबसे अधिक पाई गई है। महाभारत में भी सृष्टि के आदि में जब कुछ नहीं था तब ⊗[43]बड़ा-सा अण्ड रूप के प्रकट होने की बात आई है, जो सभी का बीज है।

ऋगवेद (1.164.46) में है, "एको सत विप्रः बहुधा वदन्ति।" जिसका अर्थ है, "एक ही सत(ईश्वर) है, जिन्हें ज्ञानीजन विभिन्न नामों से पुकारते हैं।" समूची मानव संस्कृति के आद्यनिर्माता परमपिता परमात्मा एकव्यापी शिव-शंकर स्वरूप शिवलिंग को आज भी विश्व के सभी धर्मावलम्बी मानते हैं। यहूदी लोग उसे 'जेहोवा' नामक अग्नि मानते हैं, जिसका साक्षात्कार मूसा को हुआ था। यहूदियों का चिह्न है '✡'। यह भी वास्तव में शिवलिंग का ही स्वरूप है; क्योंकि यह चिह्न एक चशक '▽' और दूसरा फ़लक '△'- इन 2 चिह्नों को मिलाने से बना है। ये चशक और फ़लक और कुछ नहीं, बल्कि शिवलिंग में दिखाया गया जलाधारी परमब्रह्म अर्थात् शिव की महद्‌ब्रह्म योनि रूपी माता है और उस पर स्थित शिवलिंग बीज बोने वाले पिता के रूप में है। साकार स्वरूप शंकर जब शिव समान सम्पूर्ण बन जाते हैं तब वे भी अग्नि की भाँति पवित्र एवं प्रकाशित हो जाते हैं, उनकी शक्ति कभी नीचे नहीं; अपितु अग्नि की भाँति सदैव ऊर्ध्व की ओर ही अग्रसर होती है। अग्नि की भाँति उत्पत्ति, भरण और प्रलय, तीनों का सामर्थ्य परमपिता परमात्मा शिव-शंकर के एकव्यापी स्वरूप में होता है। यही कारण है कि यहूदी लोग जेहोवा अर्थात् अग्नि की पूजा करते हैं। हिन्दू शास्त्रों की मान्यता अनुसार शतपथ ब्राह्मण में ⊗[44]'अग्नि ही रुद्र है', 'जो रुद्र है वही अग्नि है' इत्यादि इस प्रकार से मरुदगणों द्वारा अग्नि की स्तुति की गई है। शुक्ल यजुर्वेद में भी ⊗[45]अग्नि के भव, सर्व, ईशान, उग्र, पशुपति आदि रुद्र के ही अपर नाम गिनाए गए हैं। अथर्ववेद में भी ⊗[46]रुद्र को अग्नि कहकर नमन किया गया है। इस प्रकार रुद्र शिव-शंकर ही अग्नि है और यही यहूदियों के लिए पूजनीय भी।

बाइबल के अनुसार ⊗[47]परमेश्वर ज्योति स्वरूप है। भारत में भी शिवलिंग को ज्योतिर्लिंगम् कहा जाता है। इतना ही नहीं; परंतु बाइबल में परमेश्वर को सत्य स्वरूप, ⊗[48]सत्य का ईश्वर भी

⊗[43] बृहदण्डमभूदेकं प्रज्ञानां बीजमव्ययम्।।29।। (महाभारत, आदिपर्व, प्रथम अध्याय)

⊗[44] अग्नि वै रुद्रः' (शतपथ ब्राह्मण 3,1,3) 'यो वै रुद्रः सोऽग्निः' (शतपथ ब्राह्मण 5,2,4,13)

⊗[45] अग्नि ॐ हृदये<u>नाशिन</u> ॐ हृदयेअग्नेण <u>पशुपतिं</u> कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना। <u>शर्वं</u> मत्स्नाभ्या<u>मीशानं</u> मन्युना <u>महादेव</u>मन्तः पर्शव्येनो<u>ग्रं</u>।।(यजुर्वेद 38,9)

⊗[46] तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये (अथर्ववेद 7,87)

⊗[47] This then is the message which we have heard of Him, and declare unto you, that <u>God is light</u>, and in Him is no darkness at all. (हमने ये संदेश उसके बारे में सुना है और आपको बताया है कि भगवान लाइट है और उसमें अंधकार है ही नहीं।) (Bible, New Testament, I John, 1:5)

⊗[48] Into Thine hand I commit my spirit: Thou hast redeemed me, <u>O LORD God of truth</u>. आपके हाथों मैंने अपने आत्मा को सौंपा है, आपने मेरा उद्धार किया है- हे सच्चाई के ईश्वर! (Bible, Old Testament, Psalms, 31:5)

बताया है। हिन्दू शास्त्रों में केवल ⊗[49]परमपिता परमात्मा शिव स्वरूप को ही सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् कहा गया है। अर्थात् ईसाइयों में ईसा मसीह को जिस काठ के क्रॉस पर चढ़ाया गया था उस '✞' चिह्न को काफी पवित्र मानते हैं। यह चिह्न वास्तव में एक पड़े '-' और एक खड़े '।' डंडे से बनाया गया है। यह पड़ा और खड़ा चिह्न मात-पिता का ही कम्बाइंड स्वरूप है। वैदिक परंपरा अनुसार जब यज्ञादि रचने के लिए अग्नि को उत्पन्न किया जाता था तो दो लकड़ी को आपस में घिसा जाता था। इसमें एक पड़ी हुई लकड़ी के आधार को माता और खड़ी लकड़ी, जिससे घर्षण कर अग्नि उत्पन्न की जाती थी, उस आधेय को पिता की संज्ञा दी गई है। यह वही मात-पिता युक्त शिव-शंकर स्वरूप शिवलिंग का ही यादगार है।

गुरुनानक (जो सिक्खों के गुरु थे) ने 'ॐ निरंकार', 'सतगुरु अकाल बहुनाम', 'अकालमूर्त' कहकर उसी निराकार स्वरूप का संकेत दिया है। वास्तव में परमपिता परमात्मा सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् ही सद्गुरु है। 'अकालमूर्त' का अर्थ है जो मूर्त अर्थात् साकार स्वरूप में होते हुए भी मृत्यु को जीत चुका है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार अकाल केवल शंकर महाकाल को ही माना गया है। 'बहुनाम' की संज्ञा उसे ही दी जा सकती है जिनके बहु रूप भी हों। जो अरूप है, उन्हें नाम कैसे दिया जा सकता है? क्योंकि नाम काम के आधार पर होता है और काम साकार शरीर रूप में ही होता है। हिन्दू शास्त्रों में ⊗[50]शिव-शंकर के 11 रुद्र स्वरूप में एक 'बहुरूप' भी कहा गया है। अर्थात् यह सिद्ध हो जाता है कि हर प्रकार से गुरुनानक द्वारा परमपिता परमात्मा शिव-शंकर के निराकार स्वरूप की स्तुति की गई है।

जापान में कुछ बौद्ध लोग आज भी गोल चिकने चमकीले पत्थर को दृष्टि के सम्मुख कर अपना चित्त स्थिर करते हैं। शंकर को भी जब योग में आरूढ़ होते हुए दिखाया है तो उनके आगे शिवलिंग का विग्रह रूप दिखाया जाता है। इन्हीं का अनुसरण जापान में बौद्धियों द्वारा किया जा रहा है।

रात्रि में च्यवन अथवा अवतरण करने वाले उस परमपिता परमात्मा एकव्यापी शिव-शंकर स्वरूप के लिए हिंदुओं में महाशिवरात्रि का गायन है तो मुस्लिमों की धर्मपुस्तक कुरानशरीफ में भी कहा गया है- ⊗[51]'और(हे पैगंबर!) तुमको क्या मालूम, रात को आने वाला क्या है? (वह) चमकता हुआ

⊗[49] राम और नारायण, दोनों के इष्ट तो परमपिता परमात्मा शिव-शंकर ही हैं। जहाँ राम की शिव उपासना रामेश्वर में आज भी यादगार के रूप में है, वहीं नारायण को स्वदर्शन-चक्र की प्राप्ति भी शिव से ही हुई है, यह शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख है। इसलिए इन्हें भी शिवोपासक होने कारण 'सत्य' की संज्ञा दी गई है; जैसे- राम नाम सत्य है, सत्यनारायण इत्यादि भी उसी के नाम हैं।

⊗[50] हरश्च <u>बहुरूपश्च</u> त्र्यम्बकश्चापराजितः। वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा।।
मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च विशाम्पते। एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः।। (हरिवंश॰ 1।3।51,52)

⊗[51] कुरान 86, सूरए तारिक 2,3

तारा है'। आज भी मुसलमान लोग जब हज करने जाते हैं तब काबा के ⊗[52]गोल काले पत्थर(संग-ए-असवद) का चुंबन किए बिना उनकी हज यात्रा पूरी नहीं मानी जाती। जहाँ पत्थर की पूजा वर्जित है, वहाँ पर इस प्रकार के गोल पत्थर को चूमने की प्रथा हैरान करने वाली बात ही है। वास्तव में यह पत्थर भी शिवलिंग का ही यादगार है। असवद का संस्कृत शब्द है- अश्वेत। अश्वेत कहा जाता है जो सफेद न हो अर्थात् जो काला है। जिस खुदा का जिक्र मुसलमान करते हैं, उसे जब चमकने वाला तारा माना गया है, जो प्रकाशित रहता है, तो सफेद के बदले काले पत्थर को चूमने के पीछे क्या कारण है? यह काला पत्थर वास्तव में परमपिता शिव के साकार स्वरूप लिंग का यादगार है, जो इस काली करतूतों वाली कलियुगी रूपी दुनिया के बीच अपना पार्ट बजाता है। जब तक इस साकार स्वरूप (जिंदा शख्सियत) का संग नहीं करते तब तक परमपिता परमात्मा शिव(खुदा) की प्राप्ति(बरकत और आला नसीब) नहीं होती। इसी के यादगार में संग-ए-असवद काले शिवलिंग रूपी पत्थर का चुंबन करते हैं, अन्यथा निर्गुण खुदा को अपना प्यार कैसे जता सकते हैं? साकार द्वारा ही तो यह संभव है! एक और बात यह है कि मुसलमानों में चंद्र और तारे के इस '☪' चिह्न का बहुत महत्व है। वास्तव में यह कोई और नहीं, बल्कि परमपिता शिव के परमात्मा स्वरूप शंकर का ही यादगार है, जिसमें उनका साकार स्वरूप अव्यक्त हो जाने के कारण अदृश्य है; किन्तु उनकी प्रत्यक्षता का प्रमाण देते हुए उनके मस्तक पर विराजमान अर्ध चंद्रमा और उनमें प्रवेश ज्योतिर्बिन्दु शिव को ही महत्व दे रहे हैं। इस प्रकार सभी धर्मों में परमपिता परमात्मा शिव-शंकर के एकव्यापी अव्यक्त स्वरूप का ही गायन और पूजन अपनी-2 प्रथा अनुसार है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब सब धर्मों में एक ही साकार में निराकार परमात्मा स्वरूप शिवलिंग के बारे में ही बताया गया है, तो इतने सारे धर्मों की क्या आवश्यकता? इतने सारे तीर्थस्थानों का क्या प्रयोजन? इन बातों को गंभीर रूप से समझना अनिवार्य है। धर्म का अर्थ है- धारणा। वास्तव में किसी संस्कृति-सभ्यता को मन में धारण करना ही धर्म बन जाता है। यदि किसी संस्कृति-सभ्यता के प्रति मतभेद है तो वह हमारा धर्म नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट है कि सनातन संस्कृति में कुछ ऐसी कमी है, जिस कारण अनेक संस्कृतियों को जन्म लेना पड़ा। ये कमी और मतभेद वर्तमान साकार श्रीकृष्ण की श्रीमद्भगवद्गीता से ही उत्पन्न हुए हैं। गीता में श्री कृष्ण का नाम डालने से परमपिता परमात्मा शिव-शंकर का एकव्यापी स्वरूप समस्त लोगों से गुप्त हो गया। गीता में उल्लेख किए हुए परमात्मा के निराकार-निर्विकार-निरहंकार स्वरूप की पुष्टि श्री कृष्ण से कदापि हो नहीं सकती। इससे निराकार उपासकों की भावनाएँ हिल गईं और यही उनके मतभेद का मुख्य कारण बना। इसी मतभेद से उन्होंने सृष्टि के आदिकाल में परमपिता परमात्मा से मन्मनाभव होकर अपनी आत्मा में यथाशक्ति जो तेज भरा था, उसी तेज से उन्होंने अपना अलग धर्म बना

⊗[52] कई इतिहासकारों का मानना है कि सारा-का-सारा काबा वास्तव में शिव का मंदिर ही था। इस पर कई तर्कसंगत एवं रोचक डॉक्यूमेंटरी बनी हुई है, जो यूट्यूब चैनल से अथवा गूगल से प्राप्त की जा सकती है।

डाला। कई मुहम्मद जैसे निराकारवादी इतने उग्र हो गए कि जब साकार में निराकार स्वरूप की सही पहचान नहीं मिली तो उन्होंने समस्त साकार चित्रों को ही खंडित करना आरंभ कर दिया। उस परमात्मा स्वरूप की कुछ-2 स्मृतियों को अपने धर्म में, अपनी भाषा से प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है, जिसके बारे में हमने ऊपर जान लिया है। जिसने अपनी अलग धर्म की नींव रखी, उसी नाम को लेकर धर्म का नाम भी पड़ा; जैसे- ईसा मसीह से ईसाई धर्म, पैगंबर मुहम्मद से मुस्लिम धर्म इत्यादि। जो इनके तेज से आकर्षित हुए, उन्होंने उस धर्म को स्वीकार कर लिया। अब ये अनेक धर्म आपस में लड़ते रहते हैं। कारण क्या हुआ? श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण नाम डालने से यह अनर्थ हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता में आया है कि ⊗[53]"तीनों गुणों से प्रवृत्त विषयी-विकारी मनुष्यों द्वारा अंकुरित अन्य (बौद्धी, ईसाई, मुस्लिम आदि) धर्मों की शाखाएँ ऊपर-नीचे की ओर फैली हुई हैं और उनके अनुयायियों की कर्मकांडों में बंधने वाली अनेक परम्पराओं रूपी जड़ें भी नीचे की ओर फैली हुई हैं।" यहाँ पर स्पष्ट कर दिया है कि मानवी सृष्टि-वृक्ष में सभी धर्मों की शाखाएँ ऊर्ध्वगामी (परमपिता परमात्मा के अस्तित्व रूप शिवलिंग को उजागर करता हुआ सृष्टि-वृक्ष का मुख्य तना) और अधः (विषय-विकारी मानवी धारणा से दूषित परमात्मा के अस्तित्व को खंडित करती हुई) दोनों ही ओर फैली हैं। इसलिए विस्तार को प्राप्त हुए ⊗[54]"संसार रूपी वृक्ष में उस सार बीज-रूप आत्मा आदम को पकड़ना चाहिए, जो समस्त चर-अचर का भी मूल कारण है।" वह बीज कोई (शास्त्र प्रसिद्ध पीपल के पत्ते में अंगूठा चूसता) श्री कृष्ण नहीं; अपितु परमपिता शिव का साकार परमात्मा स्वरूप शंकर ही है, जिनकी यादगार हर धर्मों में सृष्टि के आदि कारण आदिपुरुष रूप में मानी जाती है; जैसे- हिन्दुओं में आदिदेव, मुसलमानों में आदम, ईसाइयों में ऐडम, जैनियों में आदिनाथ इत्यादि आश्चर्यजनक समानता भरे नामों से उल्लेख किया गया है।

वास्तव में अन्य धर्मों के सभी स्थापक विशेष रूप से निर्गुण-निराकार को मानने वाले एक प्रकार के संन्यासी हैं। ये सभी निराकारवादी तो हैं; किन्तु निराकार की असली परिभाषा से अनभिज्ञ हैं। इस बात को समझने के लिए हमें महाभारत के सबसे महत्वपूर्ण दृष्टांत को समझना अत्यावश्यक है। वह है अर्जुन के रथ में विराजमान श्री भगवान। कठोपनिषद में आया है कि ⊗[55]"यह शरीर ही रथ है और शरीर का मालिक आत्मा रथी है। आत्मा की निर्णय-शक्ति बुद्धि सारथी है तो संकल्प-शक्ति मन लगाम है, जिससे समस्त इंद्रियों रूपी घोड़े जुड़े हैं।" वास्तव में, महाभारत में प्रसिद्ध अर्जुन का रथ भी इसी आधार से एक साधारण मनुष्य-तन ही है। इस मनुष्य-तन में अर्जुन पार्टधारी की आत्मा तो है ही; किन्तु बुद्धिमानों की बुद्धि त्रिकालदर्शी परमपिता शिव जब

⊗[53] अधः च ऊर्ध्वम् प्रसृताः तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः। अधः च मूलानि अनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। 15/2

⊗[54] ततः पदम् तत् परिमार्गितव्यम् यस्मिन् गताः न निवर्तन्ति भूयः। तम् एव च आद्यम् पुरुषम् प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। 15/4

⊗[55] आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च, बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुः...वैदिक साहित्य (कठोपनिषद् 1.3.3-4)

इस सृष्टि में आते हैं तो इसी अर्जुन के शरीर रूपी रथ में प्रवेश करते हैं। अर्जुन भी सम्पूर्ण रूप से अपनी निर्णय-शक्ति बुद्धि को उसी शिव में स्थित कर, समस्त इंद्रियों के स्वामी अपने मन रूपी लगाम परमपिता शिव को सौंपकर, उन्हें अपने शरीर की बुद्धि रूपी सारथी का स्थान देता है। यह अव्यभिचारी समर्पण सिवाय ज्ञानवान अर्जुन के कोई भी करने में समर्थ नहीं है; इसलिए परमपिता शिव के मुकर्रर रथ की आत्मा को ईश्वरीय ज्ञान द्वारा सद्भाग्य अर्जित करने वाला अर्जुन कहा गया है। गीता में भी आया है- ⊗[56]"जो मुझको सम्पूर्ण श्रद्धा से याद करता है, वह मुझमें है और मैं उसमें हूँ।" गीता में कई जगह पर ⊗[57]अर्जुन को अपना प्रिय भी बताया गया है। यही अर्जुन फिर ज्ञान और योग, दोनों का मिश्र पुरुषार्थ करते हुए 'शंकर' कहलाता है और शंकर बनते हुए शिव समान स्थिति को भी तीव्र पुरुषार्थ से प्राप्त कर लेता है। इसी की यादगार शिवलिंग माना जाता है, जिसके एकव्यापी स्वरूप का परिचय देते हुए गीता में स्पष्ट कह दिया है कि ⊗[58]"मुझे अधिभूत, अधिदैव एवं अधियज्ञ सहित जो जानता है, वह वास्तव में मुझको योगयुक्त होकर जानता है।"⊗[59]अधिभूत का अर्थ ही है- क्षर भाव और अधिदैव का अर्थ है- पुरुष अर्थात् शरीर रूपी पुरी में शयन या आराम करने वाली आत्मा। विनाशी पतनशील भाव से भरे अर्जुन के साकार रथ (कलियुग में प्राप्त अर्जुन का अन्तिम चौरासीवें जन्म का तामसी पतित तन) सहित परमपिता परमात्मा को जानना ही अधिभूत सहित जानना है और जब अर्जुन की आत्मा ज्ञान एवं योग के पुरुषार्थी रूप शंकर बन ⊗[60]आत्मा में ही आनंदित रहती है, तो इस भौतिक भाव से ऊपर की ओर उठी अवस्था में स्थित शंकर सहित परमपिता शिव को जानना ही अधिदैव सहित जानना है। गीता में अधियज्ञ का अर्थ परमपिता परमात्मा ने 'अहमेव' कहते हुए स्वयं को ही 'अधियज्ञ' कहा। वास्तव में यज्ञ के रचयिता यज्ञपिता और उसके रक्षक यज्ञपति को ही अधियज्ञ कहा जाता है; किन्तु जहाँ गीता में एक ओर ⊗[61]यज्ञ की उत्पत्ति को ब्रह्म के द्वारा निहित किए हुए कर्म बताए हैं, तो वहीं दूसरी ओर ⊗[62]प्रजापति द्वारा यज्ञ की स्थापना को भी स्पष्ट किया है। इन दोनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रजापति ही परंब्रह्म स्वरूप है। यज्ञ सहित प्रजा को जन्म देते हुए प्रजापिता ब्रह्मा ('हिरण्यगर्भ' परम् ब्रह्म) यज्ञपिता भी है, तो यज्ञ सहित प्रजा की रक्षा करने वाला प्रजापति/यज्ञपति भी है; किन्तु ⊗[63]परमब्रह्म को अक्षर से उत्पन्न बताया गया है अर्थात् प्रजापिता ब्रह्मा रूपी अर्जुन में परमपिता शिव प्रवेश कर अविनाशी अश्वमेध रुद्र गीता-ज्ञान-यज्ञ की स्थापना हेतु कर्म करते हैं। यह रुद्र

⊗[56] ये भजन्ति तु माम् भक्त्या मयि ते तेषु च अपि अहम्।। 9/29

⊗[57] इष्टः असि मे दृढम् ...।। 18/64

⊗[58] साधिभूताधिदैवम् माम् साधियज्ञम् च ये विदुः। प्रयाणकाले अपि च माम् ते विदुः युक्तचेतसः।। 7/30

⊗[59] अधिभूतम् क्षरः भावः पुरुषः च अधिदैवतम्। अधियज्ञः अहम् एव अत्र देहे देहभृताम् वर।। 8/4

⊗[60] आत्मनि तुष्यति।। 6/20, सुखम् आत्यन्तिकम् यत् तत् बुद्धिग्राह्यम् अतीन्द्रियम्। ...6/21

⊗[61] यज्ञः कर्मसमुद्भवः।। 3/14, कर्म ब्रह्मोद्भवम् विद्धि...3/15

⊗[62] सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरा उवाच प्रजापतिः।...3/10

⊗[63] ब्रह्म अक्षरसमुद्भवम्। 3/15

स्वरूप ही अधियज्ञ है। यह एक ही अर्जुन के शरीर द्वारा होता है; इसलिए स्पष्ट रूप से कहा गया कि [59]‘अधियज्ञः अत्र देहे’- इस प्रजापिता ब्रह्मा रूपी अर्जुन के शरीर में ‘मैं’ (परमपिता शिव) हूँ। किसी और शरीर में नहीं, बल्कि केवल ‘इस’ शरीर में, जिसको [59]‘देहभृतां वर’, देहधारियों में श्रेष्ठ नाम से उल्लेख किया गया है। इतने स्पष्ट रूप से कहने के पश्चात् भी विकारी मनुष्यों ने इस बात को मूर्खतापूर्ण रूप से उठाते हुए समस्त मानवीय शरीर में अधियज्ञ का निवास मान परमपिता परमात्मा को सर्वव्यापी बना दिया। अब पतित मनुष्य तन(अधिभूत) सहित, आत्मिक स्थिति के ऊँची अवस्था में स्थित आकारी शंकर(अधिदैव) सहित और उससे भी परे निराकार परम ब्रह्म (प्रजापिता ब्रह्मा रूपी अर्जुन में प्रवेश निराकार परमपिता शिव अधियज्ञ) सहित परमपिता परमात्मा को जानना है और ये सब अधिभूत-अधिदैव-अधियज्ञ एक अर्जुन में ही व्याप्त हैं अर्थात् परमपिता परमात्मा एकव्यापी है, न कि सर्वव्यापी। यह एक ही साकार स्वरूप पुरुषार्थ कर ⊗[64]साकार में रहते हुए निराकार अवस्था में स्थित हो जाता है, इंद्रियों के रहते हुए उसका भान नहीं रहता, भोगते हुए भी निर्लेप रहता है। इसी कारण अधिदैव शंकर को शिव से मिला दिया जाता है और दोनों शिव-शंकर एक माने जाते हैं; किन्तु मनुष्यों ने सभी आत्माओं को परमपिता परमात्मा समझ सर्वव्यापी बना दिया। एक तो श्री कृष्ण का नाम डालकर गीता में गफलत कर दी गई और ऊपर से सभी मठाधीश, पीठाधीश, धर्मगुरु अपने को शिवोऽहम् बनाकर बैठ गए, न दैवी-सृष्टि कोई ला पाया और न आसुरी-सृष्टि को कोई रोक पाया। तो ऐसे में किसकी आस्था बनी रहेगी? वास्तव में आस्तिक से नास्तिक की ओर जाना ही दैवी-सृष्टि से आसुरी-सृष्टि की ओर जाना है। गीता ज्ञानदाता श्रीकृष्ण और परमपिता परमात्मा सर्वव्यापी-जैसी व्यर्थ और अनर्गल बातों से साकार में निराकार परमपिता परमात्मा का एकव्यापी सच्चा स्वरूप शिव-शंकर का स्पष्टीकरण नहीं मिल पाता। अब जिसे परमात्मा का परिचय ही नहीं, वह नास्तिक ही तो ठहरा! इससे समस्त निराकारवादियों ने सीधे ही निर्गुण को बिना साकार चित्र के ही याद करना आरंभ किया और जो चित्र सहित योग लगाए, उन्होंने भी गलत चित्र श्री कृष्ण का आधार लिया। ये दोनों ही वास्तव में नास्तिक ही हैं।

<u>निर्गुण रूप में याद करने से उत्तम सगुण रूप में याद करना है</u> :- गीता में आया है कि ⊗[65]“देहधारियों के लिए निराकार स्थिति पाना दुःखदायी है” और ⊗[66]सगुण रूप में याद करने को ‘श्रेष्ठ योग’ माना गया है। सगुण रूप में याद करना सहज भी है जिस कारण निरंतर भी हो सकता है और गीता में कहा गया है कि ⊗[67]“जो कर्म सहज है, वह दोषयुक्त होने पर भी अवश्य करना चाहिए; क्योंकि दोष तो सभी असहज एवं कठिन कार्यों में भी है” अर्थात् सगुण रूप में सहजतापूर्वक

⊗[64] सर्वेन्द्रियगुणाभासम् सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। असक्तम् सर्वभृत् च एव निर्गुणम् गुणभोक्तृ च।। 13/14

⊗[65] क्लेशः अधिकतरः तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिः दुःखम् देहवद्भिः अवाप्यते।। 12/5

⊗[66] मयि आवेश्य मनः ये माम् नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः।। 12/2

⊗[67] सहजम् कर्म कौन्तेय सदोषम् अपि न त्यजेत्। सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेन अग्निः इव आवृताः।। 18/48

याद करना नहीं त्यागना चाहिए। गीतानुसार ⊗[68]आसुरी स्वभाव वाले पुरुष, क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, इस ज्ञान को नहीं जानते; इसलिए वे न पवित्र रह पाते हैं, न श्रेष्ठ आचरण कर पाते हैं और न सत्य को जान पाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि 16 कलाओं में बंधायमान गलत साकार चित्र श्री कृष्ण रूपी क्षरित चन्द्र से योग लगाने से या फिर केवल कलातीत निर्गुण रूप में योग लगाने से कोई भी चरित्रवान नहीं बन सकता, बल्कि और भी अधिक क्रूर, निर्दयी और कठोर हो जाते हैं। ⊗[69]कठोरता- यह असुर का लक्षण है। जो कठोर होकर सहजता का मार्ग छोड़ दुःखदायी मार्ग पर चलते हैं, वे प्रसन्न हो ही नहीं सकते। जब ⊗[70]प्रसन्न ही नहीं होंगे तो दुःखों से मुक्त हो शीघ्रतम स्थिर बुद्धि बन नहीं सकते और न ही अप्रसन्न आत्मा ⊗[71]परमपिता परमात्मा स्वरूप को कभी यथार्थ रूप से जान पाती है। तो अंततः प्राप्त क्या हुआ? कुछ भी नहीं।

<u>दुःख एवं समस्याओं का कारण एवं निवारण</u> :- परमपिता परमात्मा शिव-शंकर के सच्चे स्वरूप शिवलिंग को न जानने के कारण ही समाज में नाना प्रकार के दुःख उत्पन्न हुए और उसका निवारण न मिलने से ही दुर्गति हुई है। सर्वप्रथम गीता में कहे जाने के पश्चात् भी काम को महाशत्रु नहीं समझा गया। कामवासना ही सृष्टि का कारण रूप ⊗[72]‘कामहैतुकम्’ मानने लगे। ‘कामोपभोगपरमा’ अर्थात् कामवासना का भोग ही परम पुरुषार्थ है, ऐसा मान अबलाओं पर अत्याचार करने लगे। इतना ही नहीं, मानवता को लांछित करते हुए बाप बेटी को, भाई बहन को, शिक्षक शिष्या को प्रदूषित करने लगे, हर प्रकार से स्त्रियाँ प्रदूषित होती रहीं और समाज पूरी तरह से जानवर समान ⊗[73]वर्णसंकर प्रजा से भरता रहा। यह वर्णसंकर प्रजा ही बिच्छू-टिंडन की भाँति समस्त समाज को स्वारथ हेतु ⊗[74]दुःख देने का ही कार्य करती है। उनमें लोभ इस प्रकार बढ़ जाता है कि धन-संपत्ति, खान-पान, वस्तु, वैभव आदि सब-कुछ लूटते जाते हैं। अमीर, अमीर बनता जाता है और गरीब, गरीब बनता जाता है। पंचभूतों से निर्मित भौतिक विज्ञान की शक्ति से अनेक प्रकार के अनैतिक प्रकृतिविहीन प्रयोग करते हुए प्रकृति को भी सम्पूर्ण रूप से दूषित कर दिया जाता है। पानी, हवा, मिट्टी, अन्न आदि सब विषैला हो जाता है। अपनी कामनाओं की तृप्ति करते-2 ‘कामेषु-क्रोधेषु’ बन जाते हैं। क्रोध का रूप इतना बढ़ जाता है कि अपनी इच्छा का विरोध करने वाले ⊗[75]सभी को अपना दुश्मन समझ हत्याएँ करते हैं। मारे अहंकार के पूरी तरह से नास्तिक हो जाते हैं और इसी अज्ञानता से प्रेरित हो ऐटम

⊗[68] प्रवृत्तिम् च निवृत्तिम् च जना न विदुः आसुराः। न शौचम् न अपि च आचारः न सत्यम् तेषु विद्यते।। 16/7

⊗[69] दम्भः दर्पः अभिमानः च क्रोधः पारुष्यम् एव च। अज्ञानम् च अभिजातस्य पार्थ सम्पदम् आसुरीम्।। 16/4

⊗[70] प्रसन्नचेतसः हि आशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। 2/65

⊗[71] भक्त्या माम् अभिजानाति यावान् यः च अस्मि तत्त्वतः। ततः माम् तत्त्वतः ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।। 18/55

⊗[72] श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 16/8 + 16/11

⊗[73] स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।। 1/41

⊗[74] संकरः नरकाय एव कुलघ्नानाम् कुलस्य च। ... 1/42

⊗[75] असौ मया हतः शत्रुः हनिष्ये च अपरान् अपि। ईश्वरः अहम् अहम् भोगी सिद्धः अहम् बलवान् सुखी।। 16/14

बम/परमाणु बम का निर्माण कर ⊗[76]समस्त संसार को नष्ट करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। (अधिक जानकारी के लिए 'खंडित गीता से उत्पन्न समस्याएँ एवं उनका समाधान' पढ़ें।)

भगवान की रची हुई सुंदर पृथ्वी माता को ठीक से न संभालने के कारण, सम्पूर्ण रूप से ⊗[77]रौरव नर्क बनाने के पश्चात्, इस नर्क से बाहर निकल नया घर बनाने हेतु अन्य ग्रहों का चक्कर लगाते रहते हैं, ऐसे मनुष्यों को मूर्ख, महामूर्ख, अज्ञानी, असुर/राक्षस नहीं, तो क्या कहें? इसे कलियुग का अंत ही तो कहेंगे! क्या यह अधर्म की अति नहीं हुई?

History Repeats Itself (इतिहास स्वयं को दोहराता है) के तथ्यानुसार 5000 वर्ष पूर्व का महाभारी महाभारत गृह-युद्ध का समय दुबारा आ चुका है। जहाँ एक ओर पूर्वी देशों में पुरानी रीति-रिवाज़, परंपरा की आड़ में, धर्म के नाम पर घरेलू युद्ध भड़क रहे हैं और जहाँ पश्चिमी देश अपनी बुद्धि के बल से, विज्ञान की मदद से अहंकार में चूर एक-दूसरे के अस्तित्व को मिटाने की धमकियाँ दे रहे हैं, वहीं पर ⊗[78]अपने वचनानुसार, अर्जुन और अर्जुन समान(unknown warriors-गुप्त पांडवीय योद्धाएँ) दैवी संपदा वालों को इकट्ठा कर रक्षा करने और इन उपरोक्त समस्त समस्याओं एवं दुःखों को रूप देने वाले असुर संपदा वालों का नाश करने और एक धर्म, एक राज्य, एक देश, एक भाषा को समर्पित दैवी-सृष्टि का निर्माण करने हेतु परमपिता परमात्मा शिव इन दो युगों अर्थात् कलियुग के अंत और सतयुग के आदिकालीन पुरुषोत्तम संगम में, भारत की पावन भूमि में अर्जुन रूपी रथ पर अवतरित हो चुके हैं और गुप्त रूप से अपना कार्य कर रहे हैं। अब इस नई दुनिया में जाने हेतु हमें पतित से पावन बन समस्त पापों से मुक्त होना होगा और इसके लिए गीता में आया है- ''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।'' (अध्याय-18, श्लोक-66) सभी हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि दैहिक धर्मों को त्याग कर उस अवतरित एकव्यापी स्वरूप, साकार में निराकार शिव-शंकर की शरण में जाना है। परमपिता परमात्मा शिव-शंकर के एकव्यापी स्वरूप द्वारा गीता-ज्ञान प्रदान किया जा रहा है। यह वही सच्ची गीता है जो सर्वशास्त्रमयी कही जाती है। यह गीता परम पवित्र, समस्त संसार को मुक्ति-जीवनमुक्ति देने वाली है, जो समस्त धर्म वालों का उद्धार कर समस्त धर्मों की माई-बाप कहलाई जाती है। अब यह दोज़ख, हेल, नारकीय कलियुग की आसुरी दुनिया खत्म होकर नई जन्नत, पैराडाइज़, सतयुगी दुनिया आ रही है, 'वसुधैव कुटुंबकम्' स्थापित हो रहा है।

<u>समस्त दैवी संपदा वालों के लिए ईश्वरीय संदेश</u> :-

⊗[76] एताम् दृष्टिम् अवष्टभ्य नष्टात्मानः अल्पबुद्धयः। प्रभवन्ति उग्रकर्माणः क्षयाय जगतः अहिताः।। 16/9

⊗[77] त्रिविधम् नरकस्य इदम् द्वारम् नाशनम् आत्मनः। कामः क्रोधः तथा लोभः तस्मात् एतत् त्रयम् त्यजेत्।। 16/21

⊗[78] परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-2।। 4/8

परमपिता परमात्मा शिव भगवानुवाच- “प्रिय वत्सों! 5000 वर्ष पूर्व महाभारत के समय मैंने ही अविनाशी ज्ञान सुनाया था, जिसका यादगार शास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता गाया जाता है; परंतु भारतवासियों की सबसे बड़ी भूल यही है कि सर्वशास्त्रमयी शिरोमणी श्रीमद्भगवद्गीता पर मुझ ज्ञान-सागर, गीता ज्ञानदाता, दिव्य चक्षु विधाता, पतित-पावन, जन्म-मरण रहित, सदा मुक्त, सभी धर्म वालों के गति-सद्गति दाता परमपिता परमात्मा शिव का नाम बदल 84 जन्म लेने वाले, सर्वगुण सम्पन्न, सोलह कला सम्पूर्ण, सतोप्रधान सतयुग आदि के राजकुमार 16 कला संपूर्ण देवता (न कि कलातीत भगवान) श्री कृष्ण+चन्द्र (जिसने इस गीता माता द्वारा यह पद पाया है) का नाम लिखकर भगवद्गीता को ही खंडन कर दिया है। इस कारण ही भारतवासी मेरे से योग भ्रष्ट हो, धर्म भ्रष्ट, कर्म भ्रष्ट, पतित, कंगाल, दुःखी बन गए हैं।

यदि भारत के विद्वान, आचार्य, पंडित यह भूल न करते तो सृष्टि के सभी धर्म वाले श्रीमद्भगवद्गीता को मुझ, निर्वाणधाम ले जाने वाले पंडे (Liberator & Guide) परमप्रिय परमपिता शिव के महावाक्य समझ कितने प्रेम और श्रद्धा से अपना धर्मशास्त्र समझ पढ़ते और भारत को मुझ परमपिता की जन्मभूमि (God’s Birth Place) समझ इसको सर्वोत्तम तीर्थस्थान मानते।”

गीता एवं महाभारत में आई कुछ बातें जिन्हें गलत समझा गया है :-

• कौरव, यादव और पांडव किसी व्यक्ति के स्थूल वंश का नाम नहीं; अपितु गुणवाचक नाम हैं। इसलिए महाभारत काव्य (महाभारत, अनुक्रमणिकापर्व, प्रथम अध्याय, 110-111) में इन्हें वृक्ष एवं उसके अंग के रूप में दर्शाया है। उदा॰: दुर्योधन को क्रोधमय तो युधिष्ठिर को धर्ममय वृक्ष बताया है।

• महाभारत युद्ध के बारे में जो हिंसक रक्तपाती युद्ध प्रसिद्ध है, वह वास्तव में कौरव एवं यादव रूपी बुरे विकारी गुणों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि) पर ज्ञान एवं योग द्वारा अहिंसक रूप से मायावी युद्ध कर जीतने की बात है। जहाँ आज के साधु-संत-महात्माएँ भी हिंसा को मना करते हैं वहाँ परमपिता परमात्मा कैसे हिंसा कर सकते हैं? मूल रूप में यह आंतरिक-मानसिक द्वंद्वयुद्ध है जो मनुष्य-सृष्टि रूपी वृक्ष के बीज आदम से निकल कर विशाल वट वृक्ष बनकर अंततः समाप्त हो जाता है और महाभारी महाभारत के रूप में विख्यात हो जाता है।

• महर्षि व्यास द्वारा रचित महाभारत ग्रंथ के बारे में इतिहासकारों का भिन्न-2 दृष्टिकोण है। भगवान द्वारा गीता का उच्चारण करना और व्यास द्वारा संकलन करना, यह तथ्य इतिहासकारों द्वारा विवादास्पद माना जाता है।

• श्री कृष्ण जहाँ गीता का भगवान माना जाता है और दूसरी ओर, माँ के गर्भ से जन्म लेने वाला, सन्दीपन गुरु से शिक्षा लेने वाला, मृत्यु को प्राप्त होने वाला दिखाया गया है, तो वह अगर्भा, अजन्मा, त्रिकालदर्शी, सर्वज्ञ गीता ज्ञानदाता परमात्मा शिव स्वरूप कैसे हो सकता है?

• महाभारत पहले केवल 8800 श्लोकों (महाभारत, अनुक्रमणिका पर्व, प्रथम अध्याय, 81) का छोटा ही ग्रंथ था; किन्तु उसमें फिर कई और श्लोकों को मिलाकर अंततः 1 लाख श्लोकों वाला बन गया। इससे यह स्पष्ट है कि कालांतर में महाभारत की सत्यता एवं शुद्धता पूर्व समान नहीं रह पाई। यही बात गीता के लिए भी लागू होती है। बाली द्वीप से एक गीता उपलब्ध हुई है जो केवल 70 श्लोकों की है। इसे सबसे प्राचीन गीता माना जा रहा है। वर्तमान महाभारत की भाँति ही कदाचित् 70 से 700 श्लोकी गीता बन गई। यदि इस गीता की प्राचीनता सम्पूर्ण रूप से प्रमाणित न हो तो भी नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता।

• जहाँ गीता में 'संभवामि युगे-युगे' का अर्थ हर युग में भगवान के अवतरण वाली बात आ रही है, वह वास्तव में दोनों- कलियुग और सतयुग के बीच में आने वाली बात है। अन्यथा क्या पापी कलियुग लाने के लिए भगवान द्वापरयुग के अंत में आते हैं? दूसरी बात, प्राचीन 70 श्लोकी गीता की बात करें तो 'संभवामि युगे-युगे' श्लोक उसमें है ही नहीं। कदाचित् इसे बाद में जोड़ दिया गया हो।

• गीता में जहाँ कृष्ण वा विष्णु का विराट रूप माना है, वास्तव में वह रुद्र शिव का ही विराट रूप है। इसका प्रमाण स्पष्ट होता है महाभारत के द्रोण पर्व के नारायणास्त्रमोक्ष पर्व (अध्याय-201, श्लोक 56 से लेकर 100) से, जहाँ पर नारायण को रुद्र का भक्त बताया है तो कृष्ण को भी रुद्र से उत्पन्न हुआ (श्लोक-95) बताया है। इसमें नारायण को रुद्र शिव के विश्वरूप का दर्शन होता है, जिस कारण 'विश्वेश्वर' का उल्लेख आया है। कदाचित् यही कारण है कि गीता में भी 'विश्वरूपदर्शनयोग' नाम दिया है।

• जहाँ गीता में वास्तव में युद्ध करने वाला विराट रूप को माना गया है और अर्जुन को केवल निमित्त (श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय-11, श्लोक-33), इसका स्पष्टीकरण महाभारत के द्रोण पर्व के नारायणास्त्रमोक्ष पर्व (अध्याय-202, श्लोक 4 से 148) में, जहाँ अर्जुन युद्ध के समय किसी तेजस्वी पुरुष द्वारा सबको मारता हुआ देख रहा था, वहीं व्यास को पूछने पर वे शिव रुद्र स्वरूप ही है, इसका ज्ञान प्राप्त हुआ।

• जहाँ 'आदिदेव' शब्द को अधिकतर कृष्ण भक्त विष्णु वा नारायण के लिए लागू करते हैं, वहीं पर महाभारत के द्रोण पर्व के नारायणास्त्रमोक्ष पर्व (अध्याय-201, श्लोक-72) में नारायण रुद्र के विश्वरूप की स्तुति करते हुए 'वरेण्य आदिदेव' से संबोधित किया है। गीता में भी अर्जुन को जब विराट रूप का ज्ञान प्राप्त होता है तो उन्होंने भी 'त्वमादिदेव पुरुषः पुराण' (श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-11, श्लोक-38) कहते हुए गीता ज्ञानदाता परमपिता परमात्मा शिव-शंकर की ही वंदना की है।

• सबसे अचरज की बात है कि समस्त महाभारत में जब-2 कृष्ण ने किसी को कुछ कहा है तो उसे कृष्ण उवाच, वासुदेव बभाषे, केशव कथयति नाम से स्पष्ट उल्लेख किया है और जब गीता की बात आई है तो कृष्ण उवाच न कहते हुए 'श्रीभगवानुवाच' कहा है। इतना ही नहीं, भक्त नारायण और

शिव-रुद्र के बीच के वार्तालाप में भी रुद्र की वार्ता को 'श्रीभगवानुवाच' कहा गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि व्यास ने जब भी श्रीभगवान उवाच कहा है, उनकी बुद्धि में स्पष्ट परमात्मा शिव-रुद्र ही थे, न कि उनके उपासक श्री कृष्ण अथवा नारायण।

क्रमानुसार उल्लेख किए हुए गीता श्लोकों का शब्दार्थ :-

(1) **मन्मना भव मद्भक्तः मद्याजी मां नमस्कुरु।... 9/34, 18/65**

{तू} **मन्मनाः** (मेरे में मन लगाने वाला), **मद्याजी** (मेरा यज्ञ रूप ईश्वरीय सेवा रूपी कर्म करने वाला) **मद्भक्तः** {और} (मुझे भजने वाला) **भव** (बन)। **मां** (मेरे प्रति) **नमस्कुरु** (श्रद्धा से झुक जा)!

(2) **इन्द्रियाणि पराणि आहुः इन्द्रियेभ्यः परम् मनः।**

मनसः तु परा बुद्धिः यः बुद्धेः परतः तु सः।। 3/42

आहुः (कहा जाता है कि) **इन्द्रियाणि पराणि** (इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं); **मनः** (मन) **इन्द्रियेभ्यः** (इन्द्रियों से) **परम्** (बड़ा है); **बुद्धिः मनसः तु परा** (बुद्धि मन से भी बड़ी है); **तु** (किंतु) **यः** (जो) **बुद्धेः** (बुद्धि से) **परतः सः** (बड़ा है वह {परमात्मा} है)। **{बुद्धिमानों की बुद्धि परमात्मा}**

(3) **सांख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।... 5/4**

सांख्ययोगौ (केवल ज्ञान और कर्मयोग-ये दोनों) **पृथक्** (अलग हैं), {ऐसा} **बालाः** (बाल बुद्धि {अर्थात् कच्ची बुद्धि} वाले) **प्रवदन्ति** (कहते हैं), **न पण्डिताः** (पण्डितजन नहीं {कहते})। **एकं** (एक का) **अपि** (भी) **सम्यक्** (भली प्रकार) **आस्थितः** (आसरा लेने वाला) **उभयोः फलं** (दोनों का फल) **विन्दते** (पाता है)।

(4) **... न हि ते भगवन् व्यक्तिम् विदुः देवाः न दानवाः।। 10/14**

हि (क्योंकि) **भगवन्** (हे भगवन्)! **ते** (आपके) **व्यक्तिं** (व्यक्त साकारी भाव शंकर को) **न देवाः** (न देवता) **विदुः** (जानते हैं), **न दानवाः** (न दानव)।

(5) **स्वयम् एव आत्मना आत्मानम् वेत्थ त्वम् पुरुषोत्तम।... 10/15**

त्वम् (आप) **स्वयं** (स्वयं) **एव** (ही) **आत्मनात्मानं** (अपने द्वारा अपने यथार्थ स्वरूप को) **वेत्थ** (जानते हैं)। (भगवान के सिवाय भगवान का परिचय कोई दे ही नहीं सकता।)

(7) **जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवम् यः वेत्ति तत्त्वतः।**

त्यक्त्वा देहम् पुनः जन्म न एति माम् एति सः अर्जुन।। 4/9

अर्जुन (हे सद्भाग्य का अर्जन करने वाले अर्जुन)! **एवं** (इस प्रकार) **मे** (मेरे) **दिव्यं** (दिव्य) **जन्म** (जन्म) {अर्थात् विशिष्ट परकाया प्रवेश} **च** (और) **कर्म** ({दिव्य} कार्यों को) **यः** (जो) **तत्त्वतः** (सत्य रूप में) **वेत्ति** (जान लेता है), **सः** (वह) **देहं** (शरीर को) **त्यक्त्वा** (त्याग कर) {इस कलियुगी दुःखी संसार में} **पुनर्जन्म** (फिर से जन्म) **न एति** (नहीं लेता), **माम् एति** (मुझ अव्यक्तमूर्ति शिवलिंग को प्राप्त होता है)।

(8) **... ज्ञातुम् द्रष्टुम् च तत्त्वेन प्रवेष्टुम् च परंतप।। 11/54**

तु (किंतु) **परंतप** (कामादिक शत्रुओं को तपाने वाले) **अर्जुन** (हे अर्जुन)! **अनन्यया** (अव्यभिचारी) **भक्त्या** (भावना के द्वारा) **अहं** (मैं) **एवंविधः** (इस भाँति सम्पूर्ण रूप में) **ज्ञातुं** (जानने-पहचानने), **द्रष्टुं** {तीसरे ज्ञान नेत्र से} (साक्षात्कार करने) **च** (और) **तत्त्वेन** (तत्वपूर्वक) {पंचतत्वों से बने शरीर की गहराई तक} **प्रवेष्टुं** (प्रवेश पाने के) **च** (भी) **शक्यः** (योग्य हूँ)।

(9) **अजः अपि सन् अव्ययात्मा भूतानाम् ईश्वरः अपि सन्।**

प्रकृतिम् स्वाम् अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया।। 4/6

अव्ययात्मा (अक्षय अर्थात् जिस आत्मा की शक्ति का कभी क्षरण न हो, वह मैं परमपिता शिव) **अजः** (अजन्मा) **सन्** (होते हुए) **अपि** (भी) {और} **भूतानां** (प्राणियों का) **ईश्वरः** (श्रेष्ठतम शासनकर्ता) **सन्** (होते हुए) **अपि** (भी), **स्वां** (अपने) **प्रकृतिं** (प्रकृष्ट ज्ञानयुक्त रचना परम्ब्रह्म का) **अधिष्ठाय** (आधार लेकर), **आत्ममायया** (आत्मशक्ति से) **सम्भवामि** ({दिव्य} जन्म लेता हूँ)।

(10) **न तत् भासयते सूर्यः न शशांकः न पावकः।**

यत् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमम् मम।। 15/6

तत् (उस {परमपद} को) **न सूर्यो** (न सूर्य), **न शशांको** (न चन्द्रमा) {और} **न पावकः** (न अग्नि) **भासयते** (प्रकाशित करती है)। **यत्** (जिस {धाम} को) **गत्वा** (जाकर) **न निवर्तन्ते** {दुःखी संसार में} (वापस नहीं लौटते), **तत्** (वह) **मम** (मेरा) **परमं धाम** (परमधाम है)।

(12) **यत् यत् विभूतिमत् सत्त्वम् श्रीमत् ऊर्जितम् एव वा।**

तत् तत् एव अवगच्छ त्वम् मम तेजोंऽशसम्भवम्।। 10/41

वा (अथवा) **यद्यत् एव** (जो भी कोई) **सत्त्वं** (प्राणी) **विभूतिमत्** (ऐश्वर्यवान्), **श्रीमत्** (श्रेष्ठ बुद्धियुक्त), **ऊर्जितं** (शक्तिवान् है), **तत्तदेव** (उसे ही) **त्वं** (तू) **मम** (मेरे) **तेजोंऽशसम्भवम्** ({योग रूपी} तेज के अंश से उत्पन्न हुआ) **अवगच्छ** (जान)

(13) **अथवा बहुना एतेन किम् ज्ञातेन तव अर्जुन।**

विष्टभ्य अहम् इदम् कृत्स्नम् एकांशेन स्थितः जगत्।। 10/42

अथवा (अथवा) **अर्जुन** (हे अर्जुन)! **तव** (तुझे) **एतेन** (इतना) **बहुना** (बहुत) **ज्ञातेन** (जानने से) **किं** (क्या {प्रयोजन है})? **अहं** (मैं {ज्योतिर्बिन्दु शिव}) **इदं** (इस) **कृत्स्नं** (सम्पूर्ण) **जगत्** (जगत को) {अपनी योगशक्ति के} **एकांशेन** (एक अंश द्वारा) **विष्टभ्य** (टिका करके), {परमधाम में} **स्थितः** (स्थित हूँ)!

(14) **अहम् आत्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। ... 10/20**

गुडाकेश (हे निद्रा को जीतने वाले)! **अहमात्मा** {ज्योतिर्बिन्दु शिव-शंकर} (मैं आत्मा) **सर्वभूताशयस्थितः** (सब प्राणियों की आधार रूपा योगशक्ति में स्थित हूँ) **च** (और) {इसी यौगिक शक्ति रूप में} **भूतानां** (सब प्राणियों की) **आदिः** (उत्पत्ति), **मध्यं** (स्थिति) **च** (और) **अन्तः** (विनाश) **च** (भी) **अहं एव** (मैं ही हूँ)।

(15) **...मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहम् तेषु अवस्थितः।। 9/4**

{अतः} **सर्वभूतानि** (सभी प्राणी) **मत्स्थानि** (मुझ {अव्यक्त बीजरूप} में स्थित हैं); **च** {किन्तु} **अहं** (मैं) **तेषु** (उनमें) **न अवस्थितः** (स्थित नहीं हूँ)। {अर्थात् सर्वव्यापी नहीं हूँ।}

(16) **राजविद्या राजगुह्यम् पवित्रम् इदम् उत्तमम्।**

प्रत्यक्षावगमम् धर्म्यम् सुसुखम् कर्तुम् अव्ययम्।। 9/2

इदं (यह {ईश्वरीय ज्ञान}) **राजविद्या** (राजाओं की विद्या है), **राजगुह्यं** (राजाई का रहस्य है), **पवित्रं** (पवित्र है), **उत्तमं** (सर्वोत्तम {ज्ञान है}), **प्रत्यक्षावगमं** (प्रत्यक्ष {अर्थात् साक्षात् ईश्वर द्वारा} जाना जाता है), **धर्म्यं** (धर्मानुकूल है), **कर्तुं** (पालन करने के लिए) **सुसुखं** (अत्यंत सहज है) {और} **अव्ययम्** (अविनाशी {भी} है)।

(17) **द्वौ भूतसर्गौ लोके अस्मिन् दैव आसुर एव च।... 16/6**

पार्थ (हे पृथ्वीपति)! **अस्मिन्** (इस) **लोके** (संसार में) **भूतसर्गौ** (प्राणियों की सृष्टि) **द्वौ** (दो प्रकार की) **एव** (ही है)-**दैवः** ({सत-त्रेतायुगी} देवताओं की) **च** (और) **आसुरः** ({द्वापर-कलियुगी} असुरों की)

(18) **मया अध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।**

हेतुना अनेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।। 9/10

कौन्तेय (हे कुन्ती पुत्र!) {कल्पादिकाल में} **मयाध्यक्षेण** (मेरी अध्यक्षता में {अर्थात् देखरेख में}) **प्रकृतिः** (प्रकृष्ट रचना परंब्रह्म) **सचराचरं** (जड़-चेतन रूप स्वर्णिम संगमयुगी शुद्ध जगत को) **सूयते** (पैदा करती है), **अनेन** (इस एक) {ही} **हेतुना** (कारण से) **जगत्** ({यह अधोमुखी} जगत्) **विपरिवर्तते** (विपरीत गति से {सतयुगी ऊर्ध्वलोक में} परिवर्तित होता है)। {उल्टी सीढ़ी की चाढ़ी}

(19) **दम्भः दर्पः अभिमानः च क्रोधः पारुष्यम् एव च।**

अज्ञानम् च अभिजातस्य पार्थ सम्पदम् आसुरीम्।। 16/4

पार्थ (हे पृथ्वी के राजा)! **दंभः** (पाखंड), **दर्पः** ({धन-परिवार का} घमंड) **च** (और) **अभिमानः** (अभिमान) **च** (तथा) **क्रोधः** (क्रोध), **पारुष्यं** (कठोरता) **च एव** (और उसी तरह) **अज्ञानं** (बेसमझी)-{ये अवगुण} **आसुरीं संपदं** (राक्षसी सम्पत्ति के साथ) **अभिजातस्य** (जन्म लेने वालों के हैं)।

(20) **लोके अस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मया अनघ।**

ज्ञानयोगेन सांख्यानाम् कर्मयोगेन योगिनाम्।। 3/3

अनघ (हे पाप रहित अर्जुन)! **पुरा** ({सृष्टि के} आदि पुरुषोत्तम संगम में) **मया** (मैंने) **अस्मिन् लोके** (इस लोक में) **द्विविधा** (दो प्रकार की) **निष्ठा** (प्रणाली) **प्रोक्ता** (कही थी)। **ज्ञानयोगेन** (ज्ञान-योग द्वारा) **सांख्यानां** (ज्ञानियों की) {अर्थात् कपिलमुनि जैसे मनन-चिंतनशील पुरुषों के लिए ज्ञानयोग} {और} **योगिनाम्** (योगीजनों के लिए) **कर्मयोगेन** (कर्मयोग द्वारा) {मार्ग बताया था}।

(21) **यस्य न अहंकृतः भावः बुद्धिः यस्य न लिप्यते।**

हत्वा अपि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते।। 18/17

यस्य (जिस {ज्ञानी} को) **अहंकृतः** ('मैंने किया है' {ऐसा}) **भावः** (भाव) **न** (नहीं है), **यस्य** (जिसकी) **बुद्धिः** (बुद्धि) **न लिप्यते** ({कर्म में} लिप्त नहीं होती), **सः** (वह) **इमान्** (इन) **लोकान्** (लोगों को) **हत्वा** (मारकर) **अपि** (भी) **न हन्ति** (नहीं मारता) {और} **न निबध्यते** (न बंधनयुक्त होता है)।

(22) **अन्तकाले च माम् एव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।**

यः प्रयाति स मद्भावम् याति न अस्ति अत्र संशयः।। 8/5

यः (जो) **अन्तकाले** (कल्पान्तकाल में) **च** (भी) **मां** (मुझ {शिव-शंकर} को) **एव** (ही) **स्मरन्** (याद करता हुआ) **कलेवरं** (शरीर को) **मुक्त्वा** (छोड़कर) **प्रयाति** (प्रबल रूहानी यात्रा करता है), **सः** (वह {योगी}) **मद्भावं** (मेरे {ईशत्व अर्थात् विश्वनाथ के} भाव को) **याति** (पाता है)। **अत्र** (इस {विषय} में) **संशयः** (संदेह) **न अस्ति** (नहीं है)।

(23) **ज्ञानेन तु तत् अज्ञानम् येषाम् नाशितम् आत्मनः।**

तेषाम् आदित्यवत् ज्ञानम् प्रकाशयति तत्परम्।। 5/16

तु (किंतु) **ज्ञानेन** {एकव्यापी के} (ज्ञान द्‌वारा) **येषां** (जिनका) **आत्मनः** (आत्मा सम्बंधी) **तत्** (वह) **अज्ञानं नाशितं** (अज्ञान नष्ट हो गया है), **तेषां** (उनका) **तत् ज्ञानं** (वह ज्ञान) **परम्** (परमेश्वर को) **आदित्यवत्** (सूर्य की तरह) **प्रकाशयति** (प्रत्यक्ष करता है) {सन शोज़ फादर}।

(24) **आवृतं ज्ञानम् एतेन ज्ञानिनः नित्यवैरिणा।**

कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेण अनलेन च।। 3/39

कौन्तेय (हे कुन्ती माता के पुत्र)! **ज्ञानिनः** (ज्ञानी पुरुष का) **नित्यवैरिणा** (नित्य शत्रु जैसा) **च** (तथा) **दुष्पूरेण** (कभी पूर्ति न होने वाली) **एतेन** (इस) **कामरूपेण** (कामविकार रूपी) **अनलेन** (अग्नि से) **ज्ञानं** (ज्ञान) **आवृतम्** (ढका रहता है)।

(25) **...पाप्मानम् प्रजहि हि एनम् ज्ञानविज्ञाननाशनम्।। 3/41**

ज्ञान+विज्ञाननाशनं (ज्ञान और योग का नाश करने वाले) **एनं** (इस) **पाप्मानं** (पापी काम विकार को) **हि प्रजहि** (अवश्य त्याग दे)।

(26) **...जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।। 3/43**

महाबाहो (हे दीर्घबाहु!) {तू} **दुरासदम्** (कठिनाई से हाथ आने वाले) {इस} **कामरूपं** (काम विकार रूपी) **शत्रुं** (शत्रु को) **जहि** (मार डाल)।

(27) **ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् प्राहुः अव्ययम्।**

छन्दांसि यस्य पर्णानि यः तम् वेद स वेदवित्।। 15/1

ऊर्ध्वमूलं ({मनुष्य सृष्टि के बीजरूप प्रजापिता ब्रह्मा से उत्पन्न ब्राहमण धर्म की} ऊपर जाने वाली जड़ों वाले), **अधःशाखम्** {अधोमुखी ब्रहमा की} (पतनोन्मुखी अनेकानेक धर्मों की शाखाओं वाले) {तथा} **छन्दांसि** (वेदादि) **यस्य** (जिसके) **पर्णानि** (पत्ते हैं), {ऐसे} **अश्वत्थं** {चिरकाल तक स्थित रहने वाले मानवीय सृष्टि रूपी} (अश्वत्थ वृक्ष को) {ऋषियों ने} **अव्ययं** (अविनाशी) **प्राहुः** (बताया है)। **यः** (जो) **तं** (उसे) **वेद** (जानता है), **सः** (वह) **वेदवित्** (वेदों का ज्ञाता है)।

(28) **ये च एव सात्त्विका भावा राजसाः तामसाः च ये।**

मत्त एव इति तान् विद्धि न तु अहम् तेषु ते मयि।। 7/12

च (और) **एव** (भी) **ये** (जो) {क्रमशः} **सात्त्विकाः** (सात्विक), **राजसाः** (राजसी) **च** (और) **तामसाः** (तामसी) **भावाः** (भाव-{संकल्प-विकल्पादि} हैं), **तान्** (उनको) {सतयुग से कलियुग तक के पतनोन्मुखी कालक्रम में} **मत्तः** (मेरे मानवीय सृष्टि के बीजरूप से) **एव** (ही) {उत्पन्न हुआ} **इति** (ऐसा) **विद्धि**

(जान)। **अहं** (मैं) **तेषु** (उनमें) **न** (नहीं हूँ); **तु** (किन्तु) **ते** (वे) {भाव अपने मूल शुद्ध स्वरूप में} **मयि** (मेरे {साकार मनुष्य-सृष्टि के बीज प्रजापिता} में {हैं})।

(29) **मया ततम् इदम् सर्वम् जगत् अव्यक्तमूर्तिना।**

मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहम् तेषु अवस्थितः।। 9/4

मया (मेरे) **अव्यक्तमूर्तिना** (अति सूक्ष्म होने से, प्रगट न होने वाले निराकारी ज्योतिर्बिंदु की विस्तारित बीजरूप साकार लिंगमूर्ति के द्वारा) **इदं** (यह) **सर्वं** (सारा) **जगत्** (जगत) {सूक्ष्म बीज से वृक्ष की भाँति} **ततम्** (विस्तृत हुआ है)। {अतः} **सर्वभूतानि** (सभी प्राणी) **मत्स्थानि** (मुझ {अव्यक्त बीजरूप शिवलिंग} में स्थित हैं); **च** {किन्तु} **अहं** (मैं) **तेषु** (उनमें) **न अवस्थितः** (स्थित नहीं हूँ)। {अर्थात् सर्वव्यापी नहीं हूँ।}

(30) **एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणि इति उपधारय।... 7/6**

सर्वाणि भूतानि (सब प्राणी) **एतद्योनीनि** (इस दो प्रकार की प्रकृति से ही जन्मे हैं), **इति** (ऐसा) **उपधारय** ({तू} जान ले) {और} **अहं** (मैं) **कृत्स्नस्य** (समस्त) **जगतः** (जगत् का) **प्रभवः** (उत्पत्तिकर्ता) **तथा प्रलयः** (और विनाशकर्ता हूँ)।

(31) **मम योनिः महत् ब्रह्म तस्मिन् गर्भम् दधामि अहम्।**

सम्भवः सर्वभूतानाम् ततः भवति भारत।। 14/3

भारत (हे अर्जुन)! **महद्ब्रह्म** {मुकर्रर रथ रूपी} (महतत्व अथवा परम्ब्रह्म) **मम** (मेरी) **योनिः** (योनि है); **अहं** (मैं) **तस्मिन्** (उसमें) {महाविनाश के समय} **गर्भं** (समस्त ज्योतिबिंदु आत्माओं के ज्ञान का गर्भ) **दधामि** (डालता हूँ)। **ततः** (उससे) **सर्वभूतानां** (सब प्राणियों की) **सम्भवः** (उत्पत्ति) **भवति** (होती है)।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।

तासाम् ब्रह्म महत् योनिः अहम् बीजप्रदः पिता।। 14/4

कौन्तेय (हे कुन्तीपुत्र अर्जुन)! **सर्वयोनिषु** (सब योनियों में) **याः** (जो) **मूर्तयः** (देह की आकृतियाँ) **सम्भवन्ति** (उत्पन्न होती हैं), **तासां** (उन सबकी) **योनिः** (योनि रूपा माता) **महत् ब्रह्म** (महतत्व मुकर्रर रथ रूपी परं ब्रह्म है) {और} **अहं** (मैं {शिव}) **बीजप्रदः** (ज्योतिबिंदु आत्माओं का ज्ञानवीर्य रूपी बीज डालने वाला) **पिता** (पिता हूँ)।

(32) **द्वौ इमौ पुरुषौ लोके क्षरः च अक्षरः एव च।**

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थः अक्षरः उच्यते।। 15/16

लोके (लोक में) **इमौ** (ये) **द्वौ** (दो) **एव** (ही) **पुरुषौ** (पुरुष हैं)-**क्षरः** (नाशवान्) **च** (और) **अक्षर** (अविनाशी)। **सर्वाणि** (सब) **भूतानि** (प्राकृतिक भूत) **क्षरः** (नाशवान् है) **च** (और) **कूटस्थः** (परमधाम रूपी ऊँचे शिखर पर रहने वाली) **अक्षरः** (अविनाशी-{आत्मा}) **उच्यते** (कही जाती है);

(33) **उत्तमः पुरुषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः।**

यः लोकत्रयम् आविश्य बिभर्ति अव्ययः ईश्वरः।। 15/17

तु (किंतु) **अन्यः** (इन दोनों से भिन्न) **उत्तमः** (सर्वोत्तम) **पुरुषः** (आत्मा) **परमात्मा** ({हीरो पार्टधारी} परमात्मा) **इति** (इस प्रकार) **उदाहृतः** (कहा जाता है), **यः** (जो) **अव्ययः** (क्षयरहित) **ईश्वरः** (ईश्वर) {योगशक्ति द्वारा} **लोकत्रयं** (तीनों लोकों को) **आविश्य** (अधिकार में लेकर) **बिभर्ति** (धारण करता है)।

(34) **अविनाशि तु तत् विद्धि येन सर्वम् इदम् ततम्।**

विनाशम् अव्ययस्य अस्य न कश्चित् कर्तुम् अर्हति।। 2/17

येन (जिस {मनुष्य सृष्टि के बीज-रूप आदम या आदिदेव शंकर} के द्वारा) **इदं** (यह) **सर्वं** (सम्पूर्ण) {विश्व} **ततम्** (विस्तार को प्राप्त हुआ है), **तत् तु** (उसको तो) **अविनाशि विद्धि** (अविनाशी जान)। **अस्य** (इस) **अव्ययस्य** (अव्यय {पुरुष शंकर} का) **विनाशं कर्तुं** (विनाश करने के लिए) **कश्चित्** (कोई भी) **न अर्हति** (समर्थ नहीं है)।

(35) **इह एव तैः जितः सर्गः येषाम् साम्ये स्थितम् मनः।... 5/19**

येषां (जिनका) **मनः** (मन) **साम्ये** {एक शिव बाप की संतान आत्मा-2 भाई-2 की} (समानता में) **स्थितं** (स्थिर है), **तैः** (उन्होंने) **इह** (संसार में) **एव** (ही) **सर्गः** ({जन्म-मृत्यु रूप} संसार को) **जितः** (जीत लिया है); **हि** (क्योंकि) **ब्रह्म** (ब्रह्मतत्व) **निर्दोषं** (दोष-पापरहित) {और} **समं** (समान है); **तस्मात्** (इसलिए) **ते ब्रह्मणि स्थिताः** (वे ब्रह्मतत्व में {ही} स्थिर हैं)।

(36) **सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिम् यान्ति मामिकाम्।**

कल्पक्षये पुनः तानि कल्पादौ विसृजामि अहम्।। 9/7

कौन्तेय (हे कुन्ती पुत्र)! **कल्पक्षये** (कल्पान्तकाल में) **सर्वभूतानि** (सब प्राणी) **मामिकां** (मेरी) **प्रकृतिं** (निराकारी स्टेज धारण करने वाली प्रकृष्ट शरीर रूपी कृति शंकर के अव्यक्त ज्योतिर्बिन्दु आत्मिक भाव को) **यान्ति** (पाते हैं) {और} **कल्पादौ** (कल्प के आदि काल से) **अहं** (मैं) **तानि** (उन्हें) **पुनः** (फिर से) **विसृजामि** (सृष्टि के लिए छोड़ देता हूँ)।

(37) **परः तस्मात् तु भावः अन्यः अव्यक्तः अव्यक्तात् सनातनः।**

यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।। 8/20

तस्मात् (उस) **अव्यक्तात्** (अव्यक्त {भूतग्राम} से) **तु** (भी) **परः** (बढ़कर) **यः** (जो) **अव्यक्तः** (अप्रगट) {और} **सनातनः** (नित्य), **अन्यः** (दूसरा) **भावः** (भाव) {अर्थात् बीज-रूप आत्मभाव है}, **सः** (वह) **सर्वेषु भूतेषु** (सब प्राणियों में) **नश्यत्सु** {व्यक्त स्वरूप के} (नष्ट होने पर) {भी} **न विनश्यति** (नष्ट नहीं होता)।

(38) **यः माम् अजम् अनादिम् च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।**

असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। 10/3

यः (जो {ज्ञानी}) **मां** (मुझको) **अजं** (अजन्मा), **अनादिं** (अनादि) **च** (और) **लोकमहेश्वरं** ({शांतिधाम, सुखधाम और दुखधाम तीनों} लोकों का महान ईश्वर) **वेत्ति** (जानता है), **स** (वह) **मर्त्येषु** (मनुष्यों में) **असंमूढः** (मोहरहित हुआ), **सर्वपापैः** (सब पापों से) **प्रमुच्यते** ({पूर्ण} मुक्त हो जाता है)।

(39) **आख्याहि मे कः भवान् उग्ररूपः नमः अस्तु ते देववर प्रसीद।**

विज्ञातुम् इच्छामि भवंतम् आद्यम् न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।। 11/31

देववर (हे देवताओं में श्रेष्ठ महादेव)! **मे** (मुझे) **आख्याहि** (बताइए) {कि} **उग्ररूपः** ({ऐसे} भयंकर रूप वाले) **भवान्** (आप) **कः** (कौन हैं)? **ते** (आपको) **नमः** (प्रणाम) **अस्तु** (है)। **प्रसीद** (प्रसन्न हो जाइए)। **भवन्तं** (आपके) **आद्यं** (आदिकालीन रूप को) **विज्ञातुं** (जानना) **इच्छामि** (चाहता हूँ); **हि** (क्योंकि) **तव** (आपके) **प्रवृत्तिं** (क्रियाकलाप को) **न प्रजानामि** ({मैं} नहीं जानता हूँ)।

(40) **'प्रसभम् यत् उक्तम् हे कृष्ण हे यादव हे सखे इति। 11/41**

'हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे' ('हे आत्माओं को आकृष्ट करने वाले शिव! हे {विदेशी बनकर आए} यदुवंशी यादव! हे सदा साथ रहने वाले सखा!') **इति** (इस प्रकार) **यत्** (जो {कुछ}) **प्रसभं** (तिरस्कारपूर्वक) **उक्तं** (कहा हो),

...तत् क्षामये त्वाम् अहम् अप्रमेयम्।। 11/42

तत् (उसके लिए) **अच्युत** (हे अव्यक्त भाव अर्थात् ऊँची स्टेज से कभी भी विचलित न होने वाले)! **अप्रमेयं** (जगत से न्यारे शिवबाबा)! **त्वां** (आपसे) **अहं** (मैं) **क्षामये** (क्षमा माँगता हूँ)।

(41) **यस्मात् न उद्विजते लोकः लोकात् न उद्विजते च यः।**

हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः यः स च मे प्रियः।। 12/15

यस्मात् (जिससे) **लोकः** (संसार) **न उद्विजते** (परेशान नहीं होता) **च यः** (और जो) **लोकात्** (संसार से) **न उद्विजते** (परेशान नहीं होता) **च** (और) **यः** (जो) **हर्षामर्षभयोद्वेगैः** (आनन्द, क्रोध, भय और चिंताओं से) **मुक्तः** (मुक्त है)-**सः** (वह {पुरुष}) **मे** (मुझे) **प्रियः** (प्रिय है)।

(42) **यत् यत् आचरति श्रेष्ठः तत् तत् एव इतरः जनः।**

स यत् प्रमाणम् कुरुते लोकः तत् अनुवर्तते।। 3/21

श्रेष्ठः (उत्तम पुरुष) **यत्-यत्** (जो-2) **आचरति** (आचरण करता है), **तत्-तत् एव** (वैसा ही) **इतरः** (दूसरे सामान्य) **जनः** (लोग) {भी करते हैं}। **सः** (वह) {उत्तम पुरुष} **यत्** (जिस) **प्रमाणं** (प्रमाणित कार्य को) **कुरुते** (करता है), **लोकः** {सामान्य} (लोग) **तत्** (उस {कार्य} का) {ही} **अनुवर्तते** (अनुसरण करते हैं)।

(53) **अधः च ऊर्ध्वम् प्रसृताः तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।**

अधः च मूलानि अनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। 15/2

तस्य (उस {सृष्टि वृक्ष} की) **गुणप्रवृद्धाः** ({सत्व, रज, तम}-तीनों गुणों द्वारा क्रमशः बढ़ने वाली) {और} **विषयप्रवालाः** (विषय विकार रूपी विधर्मी टहनियों या अंकुरों वाली) **शाखाः** (शाखाएँ) **अधः** (नीचे) {साकारी मनुष्य लोक में} **च** (तथा) **ऊर्ध्वं** (ऊपर) {स्वर्गलोक में} **प्रसृताः** (फैली हुई हैं); **च** (किंतु) **कर्मानुबंधीनि** (कर्मों को बाँधने वाली) **मूलानि** (वैराइटी धर्म रूपी जड़ें) **अधः** (नीचे) **मनुष्यलोके** (मनुष्यलोक में) **अनुसंततानि** (फैली हुई हैं)।

(54) **ततः पदम् तत् परिमार्गितव्यम् यस्मिन् गताः न निवर्तन्ति भूयः।**

तम् एव च आद्यम् पुरुषम् प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। 15/4

ततः {संगमयुगी ब्राह्मण धर्म के} (उस {लोक} से) **तत्** (उस) **पदं** (परम् पद {विष्णुलोक} को) **परिमार्गितव्यं** (खोजना चाहिए अर्थात् जानना चाहिए), **यस्मिन्** (जिसमें) **गताः** (गए हुए) **भूयः** (पुनः) **न निवर्तन्ति** {इस दुःखी संसार में} (नहीं लौटते) **च** (और) **तमेव** (उसी) **आद्यं** (आदि) **पुरुषं** (पुरुष {शिव} के) {साकार रूप-आदिदेव अर्धनारीश्वर महादेव की} **प्रपद्ये** (शरण लेना चाहिए), **यतः** (जिससे) {इस साकारी सृष्टि वृक्ष की} **पुराणी** (पुरानी) {आदि सनातन देवी-देवता धर्म की} **प्रवृत्तिः** (प्रक्रिया) **प्रसृता** (प्रसारित हुई है)।

(55) **आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च, बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुः...**

वैदिक साहित्य (कठोपनिषद् 1.3.3-4),

प्रत्येक व्यक्ति इस भौतिक शरीर रूपी रथ पर आरूढ़ है और बुद्धि इसका सारथी है। मन लगाम है तथा इन्द्रियाँ घोड़े हैं।

(56) **...ये भजन्ति तु माम् भक्त्या मयि ते तेषु च अपि अहम्।। 9/29**

तु (किंतु) **ये** (जो) **मां** (मुझको) **भक्त्या** (श्रद्धापूर्वक) **भजन्ति** (याद करते हैं), **ते मयि** (वे मुझमें हैं) **च** (और) **तेषु** (उनमें) **अहं** (मैं) **अपि** (भी) हूँ। {बाकी में?} (माया रावण)

(57) **...इष्टः असि मे दृढम् ...।। 18/64**

{क्योंकि तू} **मे** (मेरा) **दृढं** (अत्यन्त) **इष्टः** (प्रिय) **असि** (है)।

(58) **साधिभूताधिदैवम् माम् साधियज्ञम् च ये विदुः।**

प्रयाणकाले अपि च माम् ते विदुः युक्तचेतसः।। 7/30

ये (जो {ब्राह्मण}) **मां** (मुझे) **साधिभूताधिदैवं** (प्राणियों और देवताओं के अधिष्ठाता सहित) **च** (और) **साधियज्ञं** ({रुद्र ज्ञान} यज्ञ के अधिपति {प्रजापिता ब्रह्मा} सहित) **विदुः** (जानते हैं), **ते** (वे) **युक्तचेतसः** (योगयुक्त मन-बुद्धि वाले) **अपि** (भी) **प्रयाणकाले** ({कल्पान्त में}, ब्रह्मलोक जाने के समय) **मां** (मुझको) **च** (ही) **विदुः** (जान जाते हैं)।

(59) **अधिभूतम् क्षरः भावः पुरुषः च अधिदैवतम्।**

अधियज्ञः अहम् एव अत्र देहे देहभृताम् वर।। 8/4

देहभृतां वर (हे देहधारियों में श्रेष्ठ) {प्रजापिता ब्रह्मा रूपी अर्जुन}! **क्षरो** (नाशवान या पतनशील) **भावः** (भाव) **अधिभूतं** (अधिभूत {भूतों का अधिष्ठाता ब्रह्मा} है) **च** (और) **पुरुषः** (शरीर रूपी पुरी में आराम से शयन अर्थात् शांति प्राप्त करने वाली आत्मा) **अधिदैवतम्** (अधिदैव {रूपी परम पुरुष विष्णु} है)। **अत्र** (इस) {संगमयुगी प्रथम ब्राह्मण के} **देहे** (शरीर में) **अधियज्ञो** (त्याग रूपी यज्ञ सेवा का अधिपति-{परमपिता शिव}) **अहं** (मैं) **एव** (ही हूँ)।

(60) **आत्मनि तुष्यति।। 6/20 ...**

आत्मनि एव (आत्मा में ही) **तुष्यति** (आनन्दित होता है)।

सुखम् आत्यन्तिकम् यत् तत् बुद्धिग्राह्यम् अतीन्द्रियम्। ...6/21

बुद्धिग्राह्यं (बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य) **यत्** (जो) **अतीन्द्रियं** (इन्द्रियों से परे का) **आत्यन्तिकं** (उत्कृष्टतम) **सुखं** (सुख है)।

(61) **यज्ञः कर्मसमुद्भवः।। 3/14**

यज्ञः (यज्ञ) **कर्मसमुद्भवः** (कर्मयोग से उत्पन्न हुआ है)।

कर्म ब्रह्मोद्भवम् विद्धि...3/15

कर्म ({सात्विक} कर्म को) **ब्रह्मोद्भवं** (ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ) **विद्धि** (जान)।

(62) **सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरा उवाच प्रजापतिः।...3/10**

पुरा (सृष्टि के आदि में) **सहयज्ञाः** ({रुद्र ज्ञान} यज्ञ सहित) **प्रजाः** (मानसी प्रजा को) **सृष्ट्वा** (उत्पन्न करके) **प्रजापतिः** (प्रजापिता ब्रह्मा ने) {उस प्रजा से} **उवाच** (कहा)...

(63) **ब्रह्म अक्षरसमुद्भवम्। 3/15**

ब्रह्म (ब्रह्मा) **अक्षरसमुद्भवम्** (अक्षर परमेश्वर {सदाशिव-शंकर} से उत्पन्न हुआ है)।

(64) **सर्वेन्द्रियगुणाभासम् सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।**

असक्तम् सर्वभृत् च एव निर्गुणम् गुणभोक्तृ च।। 13/14

{मुकर्रर रथ में प्रवेश करने पर} **सर्वेन्द्रियगुणाभासं** (जिस {शिवशंकर} में सब इन्द्रियों के गुणों का आभास होता है), {फिर भी} **सर्वेन्द्रियविवर्जितं** (सब इन्द्रियों से रहित है), **असक्तं** (अनासक्त) **च एव** (होने पर भी) **सर्वभृत्** (सबका भरण-पोषण करने वाला है) **च** (और) **निर्गुणं** ({प्रकृति के सत-रज-तम तीन} गुणों से रहित है), {फिर भी} **गुणभोक्तृ** (उनका उपभोग करने वाला है),

(65) **क्लेशः अधिकतरः तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्।**

अव्यक्ता हि गतिः दुःखम् देहवद्भिः अवाप्यते।। 12/5

अव्यक्तासक्तचेतसां (अव्यक्त {सूक्ष्म ज्योतिबिंदु स्वरूप} में आसक्त हुए चित्त वाले) **तेषां** (उन {योगियों} को) **क्लेशः** (कठिनाई) **अधिकतरः** (अधिक होती है); **हि** (क्योंकि) **देहवद्भिः** (देहधारियों के द्वारा) **अव्यक्ता** (निराकारी) **गतिः** (गति अर्थात् स्थिति) **दुःखं** (दुःखपूर्वक) **अवाप्यते** (प्राप्त होती है);

(66) **मयि आवेश्य मनः ये माम् नित्ययुक्ता उपासते।**

श्रद्धया परया उपेताः ते मे युक्ततमा मताः।। 12/2

ये (जो) **मयि** (मुझमें) **मनः** (मन को) **आवेश्य** (स्थिर करके) **नित्ययुक्ताः** (सदा योगयुक्त हुए), **परया** (परम) **श्रद्धया** (श्रद्धा से) **उपेताः** (भरकर) **मां** (मुझ) {साकार शंकर में निराकार शिव को} **उपासते** (याद करते हैं), **ते** (वे) **मे** (मेरे) **युक्ततमाः** (सब योगियों में श्रेष्ठतम) **मताः** (माने गए हैं);

(67) **सहजम् कर्म कौन्तेय सदोषम् अपि न त्यजेत्।**

सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेन अग्निः इव आवृताः।। 18/48

कौन्तेय (हे कुन्ती पुत्र!) **सहजं** (सहज) **कर्म** (कर्म) **सदोषं** (दोषयुक्त हो) **अपि** (तो भी) **न त्यजेत्** (नहीं त्यागना चहिए); **हि** (क्योंकि) **धूमेन** (धुएँ से) **अग्निः** (अग्नि की) **इव** (तरह) **सर्वारम्भाः** (सभी {सांसारिक} कर्म) **दोषेण** (दोष से) **आवृताः** (ढके हुए हैं)।

(68) **प्रवृत्तिम् च निवृत्तिम् च जना न विदुः आसुराः।**

न शौचम् न अपि च आचारः न सत्यम् तेषु विद्यते।। 16/7

आसुराः (आसुरी गुणों वाले) **जनाः** (मनुष्य) **प्रवृत्तिं** (करने योग्य कर्म) **च निवृत्तिं** (और त्यागने योग्य कर्म को) **च** (भी) **न विदुः** (नहीं जानते)। **तेषु** (उनमें) **न शौचं** (न शुद्धता), **न आचारः** (न सदाचार) **च** (और) **सत्यं** (सत्य) **अपि** (भी) **न विद्यते** (नहीं होता)।

(69) **दम्भः दर्पः अभिमानः च क्रोधः पारुष्यम् एव च।**

अज्ञानम् च अभिजातस्य पार्थ सम्पदम् आसुरीम्।। 16/4

पार्थ (हे पृथ्वी के राजा)! **दंभः** (पाखंड), **दर्पः** ({धन-परिवार का} घमंड) **च** (और) **अभिमानः** (अभिमान) **च** (तथा) **क्रोधः** (क्रोध), **पारुष्यं** (कठोरता) **च एव** (और उसी तरह) **अज्ञानं** (बेसमझी)-{ये अवगुण} **आसुरीं संपदं** (राक्षसी सम्पत्ति के साथ) **अभिजातस्य** (जन्म लेने वालों के हैं)।

(70) **प्रसन्नचेतसः हि आशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। 2/65**

प्रसन्नचेतसः (प्रसन्नचित्त {हर्षितमुख} व्यक्ति की) **बुद्धिः** (बुद्धि) **आशु** (शीघ्र) {ही} **पर्यवतिष्ठते** (भली-भाँति स्थिर हो जाती है)। {हर्षितमुखता}

(71) **भक्त्या माम् अभिजानाति यावान् यः च अस्मि तत्त्वतः।**

ततः माम् तत्त्वतः ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।। 18/55

ततः (तत्पश्चात्) {वह ब्राह्मण उस} **भक्त्या** (ईश्वरीय भक्ति-भावना द्वारा), {मैं} **यः** (जो) **च** (और) **यावान्** (जैसा) **अस्मि** (हूँ) {वैसा ही} **मां** (मुझको) **तत्त्वतः** (यथार्थ रीति से) **अभिजानाति** (भली-भाँति जान जाता है) {और} **माम्** (मुझको) **तत्त्वतः** (यथार्थतः) **ज्ञात्वा** (समझकर) **तदनन्तरं** (बाद में) {अव्यक्तमूर्ति शिवलिंग में} **विशते** (प्रवेश करता है)।

(73) **स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।। 1/41**

...स्त्रीषु दुष्टासु (स्त्रियों के दूषित होने पर) **वार्ष्णेय** (हे वृष्णि-ज्ञानियों के वंश में उत्पन्न)! **वर्णसंकरः** (व्यभिचार से उत्पन्न हुई प्रजा) **जायते** (उत्पन्न होती है)।

(74) **संकरः नरकाय एव कुलघ्नानाम् कुलस्य च। ... 1/42**

संकरः (वर्ण संकर प्रजा) **कुलस्य** (कुल की) **च** (और) **कुलघ्नानां** (कुलनाशकों की) **नरकाय** (अधोगति के लिए) **एव** (ही) {होती है}...

(75) **असौ मया हतः शत्रुः हनिष्ये च अपरान् अपि।**

ईश्वरः अहम् अहम् भोगी सिद्धः अहम् बलवान् सुखी।। 16/14

मया (मैंने) **असौ** (इस) **शत्रुः** (दुश्मन को) **हतः** (मार लिया है) **च** (और) {भविष्य में} **अपरान्** (दूसरे शत्रुओं को) **अपि** (भी) **हनिष्ये** (मार लूँगा)। **अहं** (मैं) **ईश्वरः** (समर्थ अर्थात् ऐश्वर्यवान हूँ), **अहं** (मैं) **भोगी** (उपभोग करने वाला हूँ), **अहं** (मैं) **सिद्धः** (सफल हूँ), **बलवान्, सुखी** (बलवान और सुखी हूँ)

(76) **एताम् दृष्टिम् अवष्टभ्य नष्टात्मानः अल्पबुद्धयः।**

प्रभवन्ति उग्रकर्माणः क्षयाय जगतः अहिताः।। 16/9

एतां (ऐसे) **दृष्टिं** (दृष्टिकोण का) **अवष्टभ्य** (आश्रय लेकर) **नष्टात्मानः** (नष्ट हुए स्वभाव वाले), **अल्पबुद्धयः** (क्षुद्रबुद्धि) {और} **उग्रकर्माणः** (क्रूर कर्म करने वाले लोग) **जगतः** (जगत के) **अहिताः** (बैरी बनकर) **क्षयाय** (उसका महाविनाश करने के लिए) **प्रभवन्ति** (उत्पन्न होते हैं)। {जगत को मिथ्या बताने वाले जगत के बैरी हैं।}

(77) **त्रिविधम् नरकस्य इदम् द्वारम् नाशनम् आत्मनः।**

कामः क्रोधः तथा लोभः तस्मात् एतत् त्रयम् त्यजेत्।। 16/21

कामः क्रोधः (काम, क्रोध) **तथा लोभः** (तथा लोभ)-**इदं** (ये) **आत्मनः** (आत्मा का) **नाशनं** (नाश करने वाले) **नरकस्य** (नरक के) **त्रिविधं** (तीन प्रकार के) **द्वारं** (द्वार हैं); **तस्मात्** (इसलिए) **एतत्** (इन) **त्रयं** (तीनों को) **त्यजेत्** (त्याग देना चाहिए)।

(78) **परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।**

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। 4/8

{मैं} **साधूनां** (साधु-सन्तों की) **परित्राणाय** (रक्षा के लिए), **दुष्कृतां** (दुराचारियों के) **विनाशाय** (विनाश के लिए) **च** (और) **धर्मसंस्थापनार्थाय** {सत्}(धर्म की संपूर्ण स्थापना के लिए) **युगे-युगे** (दो युगों {कलियुग और सतयुग के संधिकाल} में) **सम्भवामि** (जन्म लेता हूँ)।

खंडित गीता से उत्पन्न समस्याएँ एवं समाधान

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अर्थात् प्रत्येक मनुष्य की गतिविधि पूरे समाज को प्रभावित करती है; परन्तु आज मनुष्य अपने शरीर रूपी रथ अर्थात् स्व के रथ के प्रति सोचते-2 स्वार्थी बन चुका है। अपने स्वार्थ के कारण ही मनुष्यों ने समाज को इस स्तर पर ला खड़ा किया है कि प्रत्येक मनुष्य आज दुःखों एवं रोगों से पीड़ित है।

परन्तु, युगों-2 से चल रही भक्ति से, वेद-शास्त्रों के निरन्तर अभ्यास से एवं पुरातन संस्कृति के रीति-रिवाज़ों का ज्यों-का-त्यों अनुकरण करने के पश्चात् भी समाज की तो दुर्गति ही हो रही है, शोषण भी हो रहा है। तो इसका कारण क्या?

समाज का शोषण मनुष्य की महान भूल का प्रतिफल है और वह भूल है- कृष्ण को गीता का भगवान मानना एवं भगवान को सर्वव्यापी मानना।

कैसे?

भ्रष्टाचारः- परमपिता परमात्मा ही आकर हमें आध्यात्मिकता का परिचय कराते हैं, जिससे हमें हमारे स्व अर्थात् आत्मा का बोध होता है। इसके पहले हम स्वयं को शरीर ही समझते थे। आत्मा मूल रूप से श्रेष्ठ और अविनाशी होती है और शरीर विनाशी और भ्रष्ट होता जाता है। मन में उत्पन्न हुए संकल्प एवं मतें यदि आत्मा के प्रति हों तो वह श्रेष्ठ कहा जाएगा, शरीर के प्रति हों तो भ्रष्ट कहा जाएगा। इन्हीं मतों का अनुकरण एवं आचरण करने से श्रेष्ठाचार तथा भ्रष्टाचार का जन्म होता है। शरीर हेतु उत्पन्न हुई मन की कामनाएँ तथा लोभ ही भ्रष्टाचार को जन्म देता है।

परन्तु, भयंकर कटु सत्य तो यह है कि गीता में कृष्ण का नाम डालने से तथा ईश्वर को सर्वव्यापी करने से भ्रष्टाचार को विस्तारित रूप का प्रोत्साहन मिला।

जैसे...........

गीता में काम विकार को 'महाशत्रु' की संज्ञा दी गई है; परन्तु दुनिया वाले इस बात को स्वीकार नहीं करते; क्योंकि गीता के तथाकथित रचयिता-कृष्ण को 8 पटरानियाँ एवं 16108 गोपियाँ और उनके बच्चे भी शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। खंडित अर्थात् कृष्ण की गीता का अनुकरण करने से मनुष्य भ्रष्ट इन्द्रियों को नियंत्रित न कर, कामविलास के भोग को भोगते रहे। यदि गीता का रचयिता शिव-शंकर भोलेनाथ को मानते तो संसार काम महाशत्रु वाली बात को सहज स्वीकार करता; क्योंकि शंकर तो अमोघ वीर्य एवं कामदेव को भस्म करने वाले रूप में प्रसिद्ध है।

गीता में जन्म-मरण के चक्कर में आने वाले कृष्ण का नाम डालने से तथा कृष्ण को भगवान मानने से, परमात्मा को भी सर्वव्यापी कर दिया और हर मनुष्य अपने को शिवोऽहम् समझ बैठ गया; परन्तु मनुष्य होते तो विकारी ही हैं ना! (पैदाइश भी विकार से ही है) और वह अपनी विकारी बुद्धि से उत्पन्न हुई विकारी मत को भी शिव मत मान अनुकरण करने लगा। विकारी एवं भ्रष्ट मत का आचरण करते-2 पूरी दुनिया, पूरा समाज भ्रष्टाचारी हो गया।

बढ़ती जनसंख्याः- बढ़ता भ्रष्टाचार अर्थात् भ्रष्ट इंद्रियों का आचरण ही बढ़ती जनसंख्या का मूल कारण है। गीता में कृष्ण का नाम डालने से उत्तरोत्तर होते हुए विकारी मनुष्यों ने कृष्ण को ही अपना आदर्श तथा प्रेरणास्तोत्र मान लिया। कृष्ण तो शास्त्रों में रासलीला के लिए मशहूर है। इससे मनुष्य भी काम-वासना के रासलीला में अपना जीवन व्यतीत करने लगा। काम विकार पर नियंत्रण न होने से मनुष्यों की जनसंख्या आज इस स्तर पर पहुँची है कि मनुष्य आज चाह कर भी जनसंख्या पर नियंत्रण नहीं पा सकता, जो कि हर देश की एक सामाजिक समस्या बन चुकी है। परिवार नियोजन जैसी योजनाओं का निरंतर प्रयास करने के बावजूद सरकार बढ़ती जनसंख्या पर काबू पाने में असमर्थ है। यदि मनुष्य गीता का भगवान शिव-शंकर को ही जानते और मानते होते तो काम को महाशत्रु मान मनुष्य काम विकार को त्यागता, जो कि बढ़ती जनसंख्या का मूल कारण है। शिव-शंकर की गीता ही असल परिवार नियोजक योजना है, इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

नारी का अनादरः- नर बुद्धिवादी होता है और नारी भावनावादी होती है। अनेक युगों से नारियों पर अत्याचार एवं शोषण होते आए हैं। इक्कीसवीं सदी आने पर भी नारियों के जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ और जिन्हें हम परिवर्तन समझ रहे हैं, वह सिर्फ ऊपरी दिखावा है; परन्तु वास्तविक सत्य तो यही है कि नारी जात आज भी तन-मन-धन से अबला ही है। बच्ची से लेकर वृद्ध माता भी स्वयं को इस पूरे समाज में असुरक्षित ही अनुभव करती है। इसका कारण भी खंडित गीता ही है। गीता में कृष्ण का नाम डालने से कृष्ण का चरित्र ही सामने आता है। कृष्ण समान आकर्षक पति एवं कृष्ण समान दुलारे बच्चे की चाह में बावरी हो अपने पति तथा बच्चों की कटपुतली बनकर रह जाती है। अपने पति को परमेश्वर मान उनकी विकारी मतों को ईश्वरीय मत समझकर चलने से और भी दुर्गति हुई। जिनको गुरु बनाया, वह भी पुरुष, जिन्होंने नारी को "नर्क का द्वार" कहा। जिससे प्रत्येक नारी के स्वाभिमान को मिटाने का घिनौना प्रयास किया गया।

यदि गीता का भगवान शिव-शंकर को मानते तो शंकर में शक्ति का प्रमाण रूप 'अर्धनारीश्वर' का गायन है, जो कि नर-नारी के समानता का प्रतीक है; नारी को भी समान प्रतिष्ठावान संस्कृति के अनुकूल अभय जीवन जीने का अधिकार प्राप्त होता।

कृष्ण का अनुकरण करने से पुरुष अनेक स्त्रियों को रखने लगे, स्त्रियों को भोगविलास का रूप मानने लगे। क्या यह एक नारी का तिरस्कार नहीं है? क्या उनकी भावनाओं का उपहास नहीं किया जा रहा? यदि मनुष्य गीता के रचयिता शिव-शंकर का अनुकरण करता तो शंकर समान एक पत्नीव्रत जीवन जगता। एक नारी सदा ब्रह्मचारी।

आतंकवादः- आतंकवाद सिर्फ आपसी भेदभाव तथा मन-मुटाव का परिणाम नहीं है; परन्तु यह भी खंडित गीता से उत्पन्न हुई एक पीड़ा है। गीता में साकार कृष्ण का नाम डालने से निराकार उपासक गीता की अवहेलना करने लगे, उपहास करने लगे। इससे अनेक मतों एवं अनेक धर्मों तथा संस्कृतियों का निर्माण हुआ, अनेक भाषाओं से अनेक प्रान्तों एवं अनेक राज्यों का निर्माण हुआ, एकता के शुद्ध एवं पवित्र स्थान को अनेकता रूपी राहु ने ग्रस लिया, एक अखण्ड सम्पूर्ण महान भारत विभाजित होकर अनेक टुकड़ों में खण्ड-2 हो गया और अपने धर्म, प्रान्त, राज्य एवं राज्यभाषा को महान जताने की होड़ में मानवता को भूलकर मनुष्य इस तरह का भयानक आतंक मचाने लगा कि दोषी-निर्दोषी सभी त्रस्त होने लगे। आज सभी वाद-विवादों में सबसे गंभीर एवं विस्फोटक स्वरूप आतंकवाद का है। यदि गीता का भगवान निराकार शिव-शंकर को मानते तो अनेकता का जन्म ही नहीं होता; क्योंकि निराकार एवं नग्न शंकर का गायन हर धर्मों में है- हिन्दुओं में 'आदिदेव', जैनियों में 'आदिनाथ', मुसलमानों में 'आदम', ईसाईयों में 'एडम' इत्यादि स्वरूपों में। यदि ऐसा होता तो आज सभी धर्म वाले गीता को ही सर्वशास्त्रमयी शिरोमणि के रूप में अपना धर्मग्रन्थ मानते एवं अनुकरण करते; परन्तु खण्डित गीता से भारत सहित पूरा विश्व आज खण्ड-2 हो गया और इसके विपरीत, अखण्ड गीता ही सृष्टि को 'वसुधैव कुटुम्ब' का स्वरूप दिलाती है। तो आतंकवाद जैसे अभिशाप का अन्त भी अखंड गीता से ही सुनिश्चित है।

शेष इतना ही नहीं; परन्तु इनके उपरान्त अनेक समस्याओं की उत्पत्ति खण्डित गीता से होती है; जैसे- बढ़ती जनसंख्या, गरीबी एवं बेरोज़गारी, जिससे चोरी-चकारी जैसे अभद्र कर्मों का आगमन होता है। व्यभिचार वृत्ति वेश्यालय का रूप धारण कर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से गन्दगी तथा बीमारियों को विस्तारित रूप प्रदान करती है। इन सभी सामाजिक समस्याओं का निर्माण इसी कृष्ण की खण्डित गीता की एकज भूल से हुआ है। यदि गीता का भगवान अर्थात् गीता के रचयिता शिव-शंकर के प्रत्यक्ष-प्रवृत्त स्वरूप को समझकर, मानकर, उनके बताए हुए मार्ग पर चलें, तो हम स्वयं के ही नहीं; परन्तु समस्त मानव जात तथा समस्त विश्व के सद्गति का कारण बन सकते हैं; अन्यथा नियति तो अटल है ही।

भविष्यवाणियाँ

(यहाँ उन लोगों की भविष्यवाणियों का वर्णन किया गया है जिनकी भविष्यवाणियाँ आज तक सही साबित हुईं):-

• कल्कि पुराण:- स्वतंत्रता के बाद भारत में एक ऐसे महापुरुष का उदय होगा जो वैज्ञानिकों का भी वैज्ञानिक होगा। वह आत्मा और परमात्मा के रहस्य को प्रगट करेगा। आत्मज्ञान उसकी देन होगी। उसकी वेश-भूषा साधारण होगी। उसका स्वास्थ्य बालकों जैसा, योद्धाओं की तरह साहसी, अश्विनी कुमारों की तरह वीर युवा व सुन्दर, शास्त्रों का प्रकाण्ड पण्डित व मानवतावादी होगा। उसका पिता ही

उसे योग साधना की ओर प्रेरित करेगा। 24 वर्ष की आयु में वह योग की उच्च भूमिका में प्रवेश करेगा।

• एण्डरसन(अमेरिका):- अरब राष्ट्रों सहित मुस्लिम बहुल राज्यों में आपसी क्रांतियाँ और भीषण रक्तपात होंगे। इस बीच भारतवर्ष में जन्मे महापुरुष का प्रभाव व प्रतिष्ठा बढ़ेगी। यह व्यक्ति इतिहास का सर्वश्रेष्ठ मसीहा होगा। वह एक मानवीय संविधान का निर्माण करेगा, जिससे सारे संसार की एक भाषा, एक संघीय राज्य, एक सर्वोच्च न्यायपालिका, एक झण्डे की रूप-रेखा होगी।

• ग्रेरार्ड क्राईसे(हॉलैंड):- भारत देश में एक ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ है जो विश्व कल्याण की योजनाएँ बनाएगा।

• जूलबर्ण:- संसार के सबसे समर्थ व्यक्ति का अवतरण हो चुका है। वह सारी दुनिया को बदल देगा। उसकी आध्यात्मिक क्रांति सारे विश्व में छा जाएगी। ...... एक ओर संघर्ष होंगे, दूसरी ओर एक नई धार्मिक क्रांति उठ खड़ी होगी जो आत्मा और परमात्मा के नए-2 रहस्य को प्रगट करेगी। .... वह महापुरुष 1962 से पूर्व जन्म ले चुका है। उसके अनुयायी एक समर्थ संस्था के रूप में प्रगट होंगे और धीरे-2 सारे विश्व में अपना प्रभाव जमा लेंगे। असंभव दिखने वाले कार्य को भी वे लोग उस महापुरुष की कृपा से बड़ी सरलता से संपन्न करेंगे।

• प्रोफेसर कीरो:- भारत का अभ्युदय एक सर्वोच्च शक्ति के रूप में हो जाएगा, पर उसके लिए उसे बहुत कठोर संघर्ष करने पड़ेंगे। देखने में यह स्थिति अत्यंत कष्टदायक होगी, पर इस देश में एक फरिश्ता आएगा जो हज़ारों छोटे-2 लोगों को इकट्ठा करके उनमें इतनी आध्यात्मिक शक्ति भर देगा कि वे लोग बड़े-2 बुद्धिजीवियों की मान्यता मिथ्या सिद्ध कर देंगे।

• गोपीनाथ शास्त्री:- अवतारी महापुरुष द्वारा जबरदस्त वैचारिक क्रांति होगी जिसके फलस्वरूप शिक्षण पद्धति बदल जाएगी और ऐसी शिक्षा का आविष्कार होगा जो व्यक्ति को जीवन जीने की कला प्रदान करेगी। जबकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली केवल पेट भरने तक ही सीमित है। .... कथित आत्मज्ञानहीन बुद्धिजीवियों से लोगों की घृणा होगी और भूगर्भ विद्या, रसायन शास्त्र, यंत्र विद्या, खनिज धातु, चुम्बक विद्या आदि के नए क्षेत्रों का और विज्ञान का विस्तार होगा, जिसका नेतृत्व भारतवर्ष का एक ऐसा धार्मिक संगठन करेगा जिसका मार्गदर्शक स्वयं भगवान होगा। धार्मिक आश्रम जन जागृति के केन्द्र बनकर कार्य करेंगे।